प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

कृषि विज्ञान मेला विशेषांक

जनवरी–मार्च, 2025

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय
Prof. M S SWAMINATHAN LIBRARY

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

भारतीय कृषि, जो प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की रीढ़ रही है, ने अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। भारत में कृषि एक महत्वपूर्ण स्तंभ है, जो लाखों किसानों के जीवन और देश की अर्थव्यवस्था में अहम भूमिका निभाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, कृषि क्षेत्र में कई सुधार और विकास हुए, जिनके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 1960 के दशक में भारतीय कृषि में हरित क्रांति के माध्यम से उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। उच्च उपज वाली किस्मों, रासायनिक उर्वरकों और आधुनिक सिंचाई विधियों का उपयोग किया गया, जिससे खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता की दिशा में बड़ी सफलता मिली। गेहूं, चावल और मक्का जैसी फसलों का उत्पादन अत्यधिक बढ़ा। भारतीय कृषि ने कई ऐतिहासिक उपलब्धियाँ हासिल की हैं, लेकिन अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं। जलवायु परिवर्तनः जिसके कारण मौसम की अनिश्चितता और बढ़ते सूखा, बाढ़ जैसी समस्याएँ किसानों के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। इससे उत्पादन में कमी, फसलों का नुकसान और किसानों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साथ ही, देश के अधिकांश हिस्सों में जल की कमी और सिंचाई सुविधाओं का अभाव किसानों के लिए एक बड़ी समस्या है। बारिश पर निर्भरता और असमान जलवायु वितरण के कारण कई क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाएँ अपर्याप्त हैं।

कृषि क्षेत्र में चुनौतियाँ से निपटने के लिए फसल विविधीकरण, दलहन और तिलहन की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह दोनों कृषि की एक महत्वपूर्ण दिशा हैं जो किसानों के लिए न केवल लाभकारी साबित हो सकती हैं, बल्कि यह देश की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक मजबूती को भी मजबूत करती हैं। फसल विविधीकरण का तात्पर्य एक ही भूमि पर विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती से है। यह किसानों को कई लाभ प्रदान करता है। जब किसान एक ही प्रकार की फसल की खेती करते हैं, तो मौसम की अनिश्चितता और कीटों के हमलों के कारण उनकी फसल को नुकसान हो सकता है। फसल विविधीकरण से इस जोखिम को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अगर कोई किसान धान की जगह सोयाबीन, मक्का या दलहन की फसल लगाए, तो यह मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है और पर्यावरण पर भी कम दबाव डालता है।

दलहन की फसलें भारतीय कृषि में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। चने, मसूर, मूंग, उडद जैसी दलहन फसलें न केवल किसानों के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि ये हमारे आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा भी हैं। दलहन प्रोटीन का अच्छा स्रोत होती हैं, और भारतीय खाने में इनका विशेष स्थान है। इसके अलावा, दलहन की फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन को स्थिर करती हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है। यह मिट्टी को प्राकृतिक रूप से उपजाऊ बनाता है, जिससे लंबे समय तक कृषि के लिए लाभकारी साबित होता है। तिलहन की फसलें जैसे कि सरसों, सूरजमुखी, सोयाबीन, अरंडी, तिल आदि न केवल तेल के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि इनका उपयोग औद्योगिक उत्पादों में भी किया जाता है। भारत में तिलहन की खेती बढ़ती जा रही है, और यह किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण आय का साधन बन चुका है। तिलहन की फसलें वाणिज्यिक दृष्टिकोण से लाभकारी होती हैं और इनमें उत्पादन के लिए कम

निवेश की आवश्यकता होती है। साथ ही, ये पर्यावरण के लिए भी अनुकूल हैं क्योंकि ये कम जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को महसूस करती हैं।

फसल विविधीकरण, दलहन और तिलहन भारतीय कृषि को अधिक स्थिर, लाभकारी और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से संतुलित बनाने के लिए महत्वपूर्ण कदम हैं। किसानों को इन फसलों की खेती को प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि इससे न केवल उनकी आय में वृद्धि होती है, बल्कि यह देश की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक मजबूती के लिए भी महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र में इन बदलावों से हमें आने वाले समय में एक समृद्ध और स्वावलंबी कृषि व्यवस्था देखने को मिल सकती है।

प्रसार दूत के इस खास अंक में हमने फसल विविधीकरण, दलहन और तिलहन से संबन्धित कई महत्वपूर्ण आलेख शामिल किए है जिनमे नवोन्मेशी कृषि तकनीकों को शामिल किया गया है जैसे अधिकतम लाभ के लिए फल आधारित फसल विविधिकरण, एआई (AI), एमएल (ML) और आईओटी (IoT) प्रौद्योगिकी के साथ स्मार्ट शहरी बागवानी खेती, प्रगतिशील और संधारणीय कृषिः विकसित भारत का मार्ग, पुष्प उद्योग में कर्तित पत्तियों की भूमिका, कृषि में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँः महत्व, मूल्यांकन और चुनौतियाँ, कृषि वानिकीः प्राकृतिक संतुलन और स्थायित्व की दिशा में एक कदम, सीएस–60 सरसोंः लवणीय और क्षारीय मिट्टी के लिए एक वरदान प्रजाति, पर्यावरण संरक्षण एवं मृदा सुधार में दलहनी फसलों का योगदान, मूली की खेती और बीज उत्पादनः उन्नत तकनीकें और उत्कृष्ट किस्में, अधिक कृषि आय हेतु विविधीकरण तहत उद्यमिता विकास। उम्मीद है यह अंक आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा। यह अंक कैसा लगा, इस बारे में अवश्य अवगत कराएँ।

संपादक

जनवरी–मार्च, 2025

प्रसार दूत

वर्ष 30 **2025**

संरक्षक
डॉ. सीएच. श्रीनिवास राव
निदेशक
डॉ. रविन्द्र पडारिया
संयुक्त निदेशक (प्रसार)
प्रधान सम्पादक
डॉ. ए.के. सिंह
सम्पादक
डॉ. एन.वी. कुंभारे
सम्पादक मंडल
डॉ. कन्हैया सिंह
डॉ. सचिन सुरोशे
डॉ. टीकम सिंह
डॉ. गिरजेश महरा
डॉ. प्रतिभा जोशी
डॉ. वाई पी सिंह
तकनीकी सहयोग
श्री विजय सिंह जाटव
श्री लक्खी राम मीणा
श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in
वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. अधिकतम लाभ के लिए फल आधारित फसल विविधिकरण 1
2. एआई (AI), एमएल (ML) और आईओटी (IoT) प्रौद्योगिकी के साथ स्मार्ट शहरी बागवानी खेती 7
3. प्रगतिशील और संधारणीय कृषिः विकसित भारत का मार्ग 10
4. पुष्प उद्योग में कर्तित पत्तियों की भूमिका 17
5. कृषि में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँः महत्व, मूल्यांकन और चुनौतियाँ 22
6. कृषि वानिकीः प्राकृतिक संतुलन और स्थायित्व की दिशा में एक कदम 26
7. सीएस–60 सरसोंः लवणीय और क्षारीय मिट्टी के लिए एक वरदान प्रजाति 33
8. पर्यावरण संरक्षण एवं मृदा सुधार में दलहनी फसलों का योगदान 36
9. मूली की खेती और बीज उत्पादनः उन्नत तकनीकी और उत्कृष्ट किस्में 41
10. अधिक कृषि आय हेतु विविधीकरण तहत उद्यमिता विकास 46

वार्षिक शुल्क ₹ 150/– मनीआर्डर द्वारा

अधिकतम लाभ के लिए फल आधारित फसल विविधिकरण

कन्हैया सिंह एवं ओम प्रकाश अवस्थी
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

भारत दुनिया में फलों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। यद्यपि फलों की उत्पादकता में वृद्धि हुई है, लेकिन बढ़ती मांग के परिणामस्वरूप यह बढ़ती आबादी के मांग को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त नहीं है। भारत में ज्यादातर किसान (लगभग 85%) छोटे और सीमांत किसानों के श्रेणी में आते हैं। निकट भविष्य में, बढ़ती आबादी और तेजी से शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, मिट्टी के कटाव और मिट्टी की लवणता के कारण भूमि के क्षरण के साथ खेती के लिए भूमि की उपलब्धता कम हो जाएगी। इस समस्या के समाधान के लिए, फल आधारित फसल विविधिकरण भारत की बढ़ती आबादी को भोजन, पोषण और आय सुरक्षा प्रदान करने का एक संभावित और कुशल विकल्प होगा। यह विविध कृषि–जलवायु स्थिति, विशाल जैव विविधता, मिट्टी की उर्वरता में व्यापक भिन्नता, भारत की भौगोलिक सीमा में बड़े कृषि योग्य भूमि क्षेत्र के कारण संभव हुआ है। उपलब्ध कृषि योग्य भूमि का उपयोग बागवानी उपज के लिए किया जा सकता है ताकि टिकाऊ उत्पादन के साथ पोषण सुरक्षा प्राप्त की जा सके।

फल आधारित फसल विविधिकरण को अब लोगों को भोजन, पोषण और आय सुरक्षा प्रदान करने के लिए सबसे आदर्श रणनीति माना जाता है। फलों के पेड़ों के साथ वार्षिक फसलों के एकीकरण से कई उत्पाद मिलते हैं जो उत्पादन और आय सृजन को एक स्थायी तरीके से सुनिश्चित करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों (भूमि, सौर उर्जा, पानी, मिट्टी) के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक इनपुट (श्रम, ऋण, बिजली, बाजार का बुनियादी ढांचा) का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाता है। बेहतर मिट्टी की उर्वरता और अंडरस्टोरी तापमान और वाष्पोत्सर्जन को कम करके छाया के सुधारात्मक प्रभाव के कारण पेड़ों की छतरी के नीचे फसल उत्पादकता बढ़ जाती है। फसल विविधिकरण में फलों के पेड़ों को शामिल करना अधिक लाभदायक है। यह समय के साथ प्रणाली की लचीलापन बढ़ाता है। इससे i) वार्षिक आधार पर सिस्टम उत्पादकता को अधिकतम करने, ii) मिट्टी–पौधे–वायुमंडल सातत्य में होने वाली विभिन्न अंतःक्रियाओं और प्रत्यक्ष, अवशिष्ट और संचयी प्रभावों पर उचित विचार करके उच्च दक्षता के साथ संसाधनों का उपयोग करने, iii) पर्यावरण की गुणवत्ता के संदर्भ में इनपुट उपयोग को तीव्र करने और iv) दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में कृषि संसाधनों और पर्यावरण की स्थिरता प्रदान करने में मदद मिलती है। इन मुद्दों पर विचार करते हुए इस लेख में सिंचित एवं असिंचित पारिस्थिति की तंत्र के लिए फल आधारित विविध फसल विविधिकरण के प्रकार पर चर्चा की गई है।

सिंचित क्षेत्रो के लिए उपयुक्त फसलें

(अ) उपरिस्तर फसलें

आम, अमरूद, केला, पपीता, मीठा संतरा, मैन्डरिन, लीची, अनानास, बेर, आंवला, अनार, बेल, कटहल, सीताफल आदि जैसी कई उच्च उपज देने वाली फल वृक्ष प्रजातियाँ सिंचित परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं।

फसल	किस्में
आम	जल्दी पकने वाली– बॉम्बे ग्रीन, रानी पसंद, गौरजीत और जरदालु; मध्य–आरंभ पकने वाली– हिमसागर, गोपालभोग और किसनभोग; मध्य पकने वाली – लंगड़ा, सफेद मालदा, दशहरी; देर से पकने वाली– सिपिया, चौसा, फजली। संकर – मल्लिका, आम्रपाली, पूसा अरुणिमा, पूसा प्रतिभा, पूसा श्रेष्ठ, पूसा पीतांबर, पूसा लालिमा, पूसा मनोहरी, पूसा दीपशिखा, अंबिका, अरुणिका

लीची	अगेती – शाही, अजौली और ग्रीन; मध्यम – स्वर्ण रूपा, रोज सेंटेड और अगेती बेदाना; मध्यम पछेती – सीएचईएस–2, चाइना, पूर्वी और पछेती बेदाना; पछेती – कस्बा और देहरादून; सुगंधित गूदा – शाही और रोज सेंटेड; छोटे बीज वाले – पछेती बेदाना, अगेती बेदाना और स्वर्ण रूपा; संकर – सबौर मधु
अमरूद	सरदार और इलाहबाद सफ़ेदा; ललित, श्वेता, धवल, लालिमा, पूसा आरूषि, पूसा प्रतिक्षा
केला	खाने योग्य ड्वार्फ कैवेंडिश, अल्पान, मालभोग, ग्रैंड नेने सब्जी योग्य– भोस, बत्तीसा और मुठिया
अनानास	क्यू क्वीन, मारीझसए पी क्यू एम–1, अमृता
मीठा संतरा	मोसब्बी, पूसा राउंड, पूसा शरद
मंदारिन	नागपुर संतरा, खासी मैन्डरिन और किन्नू मैन्डरिन
आंवला	एन ए–6, एन ए–7, कंचन, बलवंत, कृष्णा और चकैया
शहद सेब	बालानगर और अर्का सहान
पपीता	पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, पूसा पीत, अर्का सूर्या, अर्का प्रभात, सीओ–3 और सीओ–7
बेल	पंत शिवानी, पंत उर्वशी, पंत सुजाता, सीआईएसएच बेल–1, सीआईएसएच बेल–2, एनबी–5 और एनबी–9, गोमा यशी
बेर	सेब, गोला, बनारसी कराका और उमरान

(ब) ज़मीनी फसलें

(i) सब्जियाँः सब्जियों की फसलों में बैंगन, टमाटर, मिर्च, आलू, फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठ फोभी, मूली, गाजर, पालक, लौकी, तुरई, स्पंज लौकी, करेला और लोबिया आम तौर पर सिंचित पारिस्थितिकी तंत्र में उगाई जाती हैं।

(ii) फसलेंः अनाज और दालें इस पारिस्थितिकी तंत्र में रहने वाले लोगों के आहार का प्रमुख हिस्सा हैं और कैलोरी सेवन का बड़ा हिस्सा हैं। धान और गेहूँ सिंचित परिस्थितियों में उगाई जाने वाली आम अनाज की फ़सलें हैं। दालें जैसे मसूर, चना, मूंग, मटर और उरद इस स्थिति में व्यापक रूप से उगाए जाते हैं। रेपसीड और सरसों महत्वपूर्ण तिलहन फ़सलें हैं।

(iii) घासः सेवन, अंजन, धामन, करद, संकर नेपियर घास, गिनी घास और नंदी घास प्राकृतिक रूप से चरागाह भूमि, गोचर, ओरण और चरागाह भूमि में पाए जाते हैं जो मानसून के मौसम में पनपते हैं और उन्हें न्यूनतम देखभाल की आवश्यकता होती है।

(iv) औषधीय फसलेंः इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयोजनों के लिए कई औषधीय पौधे उगाते हैं जैसे पत्तियों के लिए बेलाडोना, सेन्ना, पेरीविंकल या विंका और एलोवेरा, बीज के लिए डिल या सोवा, इसबगोल (साइलियम), अश्वगंधा (शीतकालीन चेरी और भारतीय जिनसेंग), सर्पगंधा, सफेद मूसली, मुलेठी, पेरीविंकल या विंका, जड़ के लिए औषधीय रतालू और फलों के लिए औषधीय सोलनम।

(v) मसाला फसलेंः मेथी, जीरा, मिर्च, सौंफ, धनिया, मेथी, हल्दी और अदरक।

3. प्रमुख फसल प्रणाली

व्यवहार में, फसलों का चयन और फसल प्रणाली को अपनाना बुनियादी ढांचे, सामाजिक–आर्थिक कारकों, मिट्टी और जलवायु, व्यापार और विपणन से संबंधित कारकों पर निर्भर करता है, जो सभी सूक्ष्म स्तर पर परस्पर क्रियाशील होते हैं। प्रति इकाई क्षेत्र और समय में आर्थिक लाभ या मौद्रिक लाभ फसल प्रणाली को अपनाने के लिए प्रमुख

विचारों में से एक है। इस क्षेत्र में उगाई जाने वाली फलों, सब्जियों और अन्य फसलों की विविधता के आधार पर, वृहद स्तर पर उभरने वाली प्रमुख फसल प्रणाली हैं।

(i) बागवानी–कृषि प्रणाली

(ii) बागवानी–पशुपालन प्रणाली

(iii) बागवानी–कृषि–पशुपालन प्रणाली

(i) बागवानी–कृषि प्रणालीः यह प्रणाली आय में स्थिरता के अलावा किसान परिवार को बेहतर पोषण और स्वास्थ्य मानक प्रदान करती है। सिंचित क्षेत्रों में फलदार फसलों के बीच सब्जी, दलहन और तिलहन की फसल उगाना एक प्रचलित पारंपरिक बागवानी–कृषि प्रणाली है। फलों के पेड़ों को एक ओवरस्टोरी घटक के रूप में और साथ ही जमीन पर उगने वाली फसलों को उगाने से मिट्टी की सतह के साथ–साथ उपसतह में नमी और पोषक तत्व निष्कर्षण का दोहरा उद्देश्य प्राप्त होता है।

आम आधारित फसल प्रणालीः भा.कृ.अनु.प.–आरसीईआर, अनुसंधान केंद्र, रांची में आम के पौधों के युवा फलने के चरण (6वें से 10वें वर्ष) के दौरान 20 विभिन्न कृषि–बागवानी प्रणालियों के पौधे के विकास व्यवहार, विभिन्न घटक फसलों की उत्पादकता, लाभ प्रदता, मिट्टी की उर्वरता की स्थिति और कार्बन अवशोषण क्षमता का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया। पूर्वी पठार और पहाड़ी क्षेत्र के तहत आम आधारित कृषि–बागवानी प्रणालियों के लिए उपयुक्त भराव फसल और अंतर–फसल संयोजनों को मानकीकृत करने के लिए वर्ष 1999–2000 के दौरान क्षेत्र परीक्षण की स्थापना की गई थी। अध्ययन से संकेत मिलता है कि अंतरफसल के रूप में धान के साथ आम और भराव पौधों की वृद्धि में वृद्धि हुई है। मिट्टी की उर्वरता के संबंध में, विशेष रूप से आम + अमरूद + धान कृषि–बागवानी प्रणाली के तहत रोपण के 10 साल बाद उपलब्ध नाइट्रोजन और पोटेशियम की मात्रा में कमी दर्ज की गई। सभी प्रणालियों में, आम + अमरूद + फ्रेंच बीन के तहत अधिकतम उपज दर्ज की गई। सभी पांच वर्षों के दौरान, या तो अमरूद को पूरक फसल के रूप में या फ्रेंच बीन को अंतरफसल के रूप में कृषि–बागवानी प्रणालियों के मामले में काफी अधिक आय दर्ज की गई। केंद्रीय उपोष्णकटिबंधीय बागवानी संस्थान, लखनऊ में आम की किस्म 'दशहरी' की उपज पर अंतरफसलों के प्रभावों की जांच के लिए एक प्रयोग किया गया। एकल–अंतर–फसल प्रणाली के अंतर्गत उपचार में केवल आम (नियंत्रण), आम+बैंगन ('रजनी'), आम+ लौकी ('वरद'), आम+फूलगोभी ('गिरजा') और आम+पत्ता गोभी ('इंडम 296') शामिल थे। आम के बाग में अंतर–फसल के रूप में बैंगन की खेती ने अन्य अंतर–फसल प्रणालियों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से सबसे अधिक उपज (19.38 टन/हेक्टेयर) दर्ज की, जिसके बाद लौकी (13.54 टन/हेक्टेयर) का स्थान रहा। अंतर–फसल के रूप में गोभी के साथ सबसे कम उपज (8.50 टन/हेक्टेयर) दर्ज की गई। बैंगन की अंतर–फसल भी नियंत्रण की तुलना में आम की उपज (4.55 टन/हेक्टेयर) को 8.6ः बढ़ाने के लिए फायदेमंद साबित हुई। विभिन्न फसल संयोजनों में मिट्टी का पोषण स्तर भी भिन्न–भिन्न रहा, जिसमें क्रमशः फूलगोभी, पत्तागोभी और बैंगन की फसल संयोजन में कार्बनिक कार्बन, पोटैशियम, जिंक, तांबा, मैंगनीज और लोहा पोषक तत्वों का स्तर भी बढ़ा। आम के बाग में बैंगन से सबसे अधिक मौद्रिक लाभ (1,60,300 रुपये प्रति हेक्टेयर) प्राप्त हुआ, जबकि आम की एकमात्र फसल से 49,920 रुपये प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ। अंतर–फसल विशेष रूप से उत्पादन–पूर्व चरण और "ऑफ" वर्ष के दौरान आय और रोजगार सृजन को बनाए रखने में प्रभावी रही, खासकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए। इस प्रकार, आम के बागों में अंतर–फसल किसानों को साल भर उत्पादन, रोजगार, खेती की लागत में कमी और पोषण सुरक्षा प्रदान करने के अलावा मौद्रिक लाभ में वृद्धि करने में मदद कर सकती है।

अमरूद आधारित फसल प्रणालीः भारत के पश्चिम बंगाल की जलोढ़ मिट्टी में मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता पर अंतर–फसल के प्रभाव का पता लगाने के लिए विभिन्न अमरूद–आधारित अंतर–फसल प्रणालियों का उपयोग करके एक प्रयोग किया गया। लोकप्रिय अंतर–फसलों जैसे बैंगन, केला और लौकी को अमरूद के बाग में नियंत्रण (अंतर–फसल के बिना उपचार) के साथ उपचार के रूप में लिया गया। अध्ययन से पता चला कि अमरूद + केला + अमरूद + बैंगन प्रणालियाँ मिट्टी के थोक

घनत्व, जल धारण क्षमता, एसओसी, उपलब्ध एनपीके जैसे भौतिक–रासायनिक गुणों में सुधार करके सबसे महत्वपूर्ण अंतर–फसल प्रणाली साबित हुईं। एक ही प्रणाली से अधिकतम प्रणाली समतुल्य उपज और आर्थिक लाभ प्राप्त किया गया। इस प्रकार, अमरूद + केला अंतर–फसल प्रणाली न केवल मिट्टी की उर्वरता को बहाल करने के लिए सबसे अच्छी है, बल्कि पश्चिम बंगाल के अमरूद उत्पादकों के लिए अधिकतम आर्थिक लाभ भी प्राप्त करती है। उत्पादकता, स्थिरता और लाभप्रदता बढ़ाने के लिए अंतर–फसल संयोजन (अमरूद के साथ बीज मसाले) की प्रतिक्रिया की जांच करने के लिए आईसीएआर–एनआरसी ऑन सीड स्पाइसेस, अजमेर में 2016–17 से 2019–20 के दौरान एक क्षेत्र प्रयोग किया गया था। इस प्रयोग में 11 उपचार शामिल हैं, जैसे मेथी + अमरूद, धनिया + अमरूद, निगेला + अमरूद, सौंफ + अमरूद, अजवाइन + अमरूद, सोल मेथी, सोल धनिया, सोल निगेला, सोल सौंफ, सोल अजवाइन और सोल अमरूद के साथ यादृच्छिक ब्लॉक डिजाइन में रखा गया है। तीन वर्षों के एकत्रित आंकड़ों पर आधारित परिणामों से पता चला कि ग्यारह अलग–अलग उपचारों में से, अकेले एकल फसल उपचार ने अंतर–फसल उपचारों की तुलना में सबसे अधिक उपज दर्ज की, हालांकि उत्पादन से संबंधित आंकड़ों के अवलोकन के बाद यह पाया गया कि मेथी + अमरूद अंतर–फसल सबसे अधिक लाभदायक पाई गई क्योंकि इसमें उच्चतम शुद्ध लाभ और बी.सी.–लाभःलागत अनुपात (105903.00 रुपये और 1.82) दर्ज किया गया। इस प्रकार उच्च शुद्ध लाभ और लाभ–लागत अनुपात, उच्च प्रणाली उत्पादकता और लाभप्रदता प्राप्त करने के लिए अमरूद के साथ मेथी की अंतर–फसल का सुझाव दिया गया।

पपीता आधारित फसल प्रणालीः शुरुआत में बाग में पर्याप्त जगह उपलब्ध होती है और इसलिए कुछ फसलों को लाभ के साथ लिया जा सकता है। पपीता आधारित फसल प्रणाली (अनुक्रमिक और अंतर–फसल) सबसे अधिक लाभदायक पाई जाती है क्योंकि वे उत्तर बिहार में पपीता + तम्बाकू अंतर–फसल के मामले में उच्च शुद्ध लाभ देती हैं। एक प्रयोग में पाया गया कि पपीता + तम्बाकू अंतर–फसल के मामले में 1 वर्ष 8 महीने में प्रति हेक्टेयर 1,67,000 रुपये का रिकॉर्ड शुद्ध लाभ हुआ।

लीची आधारित फसल प्रणालीः लीची के पेड़ों की छाया में उगाने के लिए उपयुक्त फसलों की पहचान राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र मुजफ्फरपुर द्वारा की गई। युवा गैर–फलदार लीची बागों के लिए अंतर–स्थान उपयोग प्रोटोकॉल विकसित किया गया है जिसमें (1) लीची–केला (2) लीची–लोबिया–आलू–प्याज (3) लीची–भिंडी–ग्लेडियोलस मॉडल शामिल हैं, जिनका लाभःलागत अनुपात क्रमशः 2.38, 1.53 और 1.37 है। रतालू, हल्दी, अरबी, मक्का और आलू को युवा लीची पौधों की आंशिक छाया के तहत अंतर–फसल के रूप में अत्यधिक उपयुक्त पाया गया।

(ii) बागवानी–पशुपालन प्रणाली

फलदार वृक्षों और चारागाह प्रजातियों का संयोजन, जिसे आमतौर पर "बागवानी–पशुपालन प्रणाली" के रूप में जाना जाता है, मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने और मवेशियों की भूख मिटाने के कई तरीकों में से एक है। इस प्रणाली में प्रजातियों की उपयुक्तता के अनुसार पेड़ों के विकास के शुरुआती और बाद के वर्षों के दौरान फलों के पेड़ों और घासों को एक साथ उगाया जाता है। फलों के पेड़ आमतौर पर पहली श्रेणी बनाते हैं जबकि घास को जमीन पर उगने वाली फसल के रूप में उगाया जाता है। ऐसी प्रणाली पत्तियों, घास और फलों के माध्यम से ग्रामीण जनता की चारे की आवश्यकता को पूरा करती है, जो मानव आहार में एक बहुत ही आवश्यक घटक है। ऐसी प्रणाली में हालांकि यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि चारा फसलें मुख्य फसल की वृद्धि और विकास को प्रभावित न करें। सीवन, अंजन और धामन के अलावा करद *(डी. एनुलैटम), पी. एंटीडोटेल* और *शिमा नर्वोसम* जैसी बारहमासी घासें प्राकृतिक चरागाहों, गोचर, ओरण और रेंज भूमि में पाई जाती हैं और वर्षा आधारित परिस्थितियों में उच्च चारा उपज देती हैं। बागवानी–पशुपालन प्रणाली, जहां फलों के पेड़ों के बीच की जगहों में घास और घास दलहनी मिश्रण की खेती के लिए प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। सर्दियों की घास यानी बारहमासी राई, लॉन्ग फस्क्यू, चरागाह मानव और हिमा सिक्किम, जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, नीलगिरी पहाड़ियों

और उत्तरांचल के कुमाऊं और गढ़वाल पहाड़ियों में उगाई जाती हैं। सिंचित परिस्थितियों में इसे उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में सर्दियों के चारे के रूप में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। ये घास ठंड और पाले के प्रति बेहद प्रतिरोधी हैं, 1800 से 2500 मीटर की ऊंचाई के बीच अच्छी फसल उगाई जा सकती है, लेकिन मध्य पहाड़ियों में सिंचित स्थिति में इसकी खेती संभव है। बागवानी चारा उत्पादन वो प्रणाली है जो चारे की तीव्र कमी को पूरा करने, मिट्टी को बेहतर बनाने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए की जाती है। इसलिए, सर्दियों के महीनों के दौरान हरे चारे की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए उत्पादन तकनीकों और वर्ष की बड़ी अवधि के लिए कुल चारा आपूर्ति को उन्नत घास प्रजातियों के साथ बागवानी–पशुपालन प्रणाली को अपनाकर उपयोग में लाने की आवश्यकता है।

(iii) बागवानी–कृषि–पशुपालन प्रणाली

बागवानी–कृषि–पशुपालन प्रणाली में फलों की फसलों के साथ–साथ अन्य कृषि या चारा फसलों का संयोजन किया जाता है, जिससे किसानों को पूरे वर्ष कुछ लाभ मिलता है। इसमें चारागाह (घास और/या दलहनी) और फलों के पेड़ों को एकीकृत किया जाता है, ताकि मध्यम रूप से क्षरित भूमि का उपयोग करके फलों, चारे और ईंधन की लकड़ी की माँग और आपूर्ति के बीच के अंतर को पूरा किया जा सके। भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसन्धान संस्थान, झाँसी ने उच्च उत्पादकता के लिए आंवला और अमरूद आधारित कृषि–बागवानी–पशुपालन प्रणाली विकसित की है। इस प्रणाली में उपयोग की जाने वाली घासों में *सेंचरस सिलिएरिस, स्टाइलोसेंथेस सीब्राना* और *स्टाइलोसेंथेस हैमाटा* शामिल हैं। 10 वर्षों की अवधि के दौरान, यह 4–6 का लाभःलागत अनुपात देता है। बुंदेलखंड, महाराष्ट्र और कर्नाटक क्षेत्र के वर्षा आधारित किसानों के बीच यह तकनीक स्वीकार्य हो रही है और फलों विशेषकर बेर, आंवला, अमरूद, चीकू आदि का रकबा बढ़ रहा है। भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसन्धान संस्थान, झाँसी में विकसित अमरूद, बेर, आंवला आदि पर आधारित बागवानी–चारागाह प्रणालियों में वर्षा आधारित क्षेत्रों की बंजर भूमि पर 6.5–12 टन शुष्क पदार्थ/हेक्टेयर चारे की अच्छी उत्पादन क्षमता है। बागवानी–चारागाह प्रणालियां मिट्टी के नुकसान को रोकने और नमी को संरक्षित करने के साथ–साथ चारा, फल, ईंधन की लकड़ी और पारिस्थितिकी तंत्र संरक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति कर सकती हैं। लंबे समय के चक्रण के बाद यह मिट्टी की उर्वरता और सूक्ष्मजीव गतिविधियों में सुधार करती है।

असिंचित क्षेत्रों के लिए

शुष्क क्षेत्रों में मुख्यतः आंवला, बेर, बेल, खजूर और खेजड़ी आधारित बहुमंजिली सस्याक्रम योजनाओं को अपनाया जा सकता है। थार मरूस्थल के अर्ध शुष्क और कम शुष्क क्षेत्रों में आंवला और खजूर आधारित प्रारूप की अच्छी संभावनाएं हैं। जबकि अधिक शुष्क क्षेत्रों में बेर, बेल और खेजड़ी आधारित पद्धति की सफलता की संभावना अधिक है। बेर की जिजिफस मोरसियाना और जिजिफस रोटणडीफोलिया प्रजातियां अर्धशुष्क क्षेत्रों में अधिक सफल रहती हैं, जबकि जिजिफस न्यूमलेरिया को अत्यंत शुष्क क्षेत्रों में बहुमंजिली सस्य–क्रम योजनओं में सम्मिलित किया जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रों में बहुमंजिली सस्य–क्रम योजनओं में फसलों का ऊर्ध्वाधर स्तरीकरण

स्तरीकरण	फसल
धरातलीय स्तर	मोंठ, ग्वार, मूंग, चना, मेथी, जीरा, मिर्च, सरसों, गेहूं, जौ, सेन्क्रस सिलिएरिस, लेसिरस सिंडिकस, नेपियर घास, अंजन घास, परघास, कचरी, टिंडा, तरबूज
प्रथम मंजिल	करोंदा, साजी, अनार, नींबू, केर
द्वितीय मंजिल	बेर, बेल, शेहतूत, खेजड़ी
तृतीय मंजिल	आंवला, खजूर

इसी प्रकार फसल पद्धतियों का प्रारूप अपनाने के समय क्षेत्र की स्थानीय आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में पशुधन की उपलब्धता अधिक हो वहां घास और चारे वाली फसलों को घटक के रूप में लेना चाहिए। इसी प्रकार शहरी और घनी आबादी वाले क्षेत्रों में सब्जियों (बैंगन, मिर्च, कचरी, तरबूज, टिंडा) और मसालों (जीरा, मेथी) को प्रथम स्तरीय फसलों के रूप में अपनाया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में मुख्यतः निम्न बहुमंजिली सस्य–क्रम योजनाओं के प्रारूपों की सफलता की संभावना हो सकती हैः

1. आंवला + बेल + करौंदा + मोंठ + चना
2. आंवला + सहजन + साजी + ग्वार + गेहूँ
3. आंवला + खेजड़ी + साजी + मोंठ + जीरा
4. आंवला + खेजड़ी + लेसिरस सिंडिकस + सरसों
5. आंवला + केर + सेन्क्रस सिलिएरिस + जीरा
6. बेर + केर + ग्वारपाठा + ग्वार
7. बेर + खेजड़ी + सजी + मोंठ + मेथी
8. खेजड़ी + बेर + फोग + सोनामुखी + धामन + घास + सेन्क्रस सिलिएरिस

आंवला आधारित फसल प्रणालीः आंवला आधारित बहुमंजिली सस्य–क्रम योजनओं में निम्न छह प्रारूपों पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा हैंः

1. आंवला + बेर + बैंगन + मोंठ + मेथी
2. आंवला + बेल + करौंदा + मोंठ + चना
3. आंवला + सहजन + साजी + ग्वार + गेहूँ
4. आंवला + खेजड़ी + साजी + मोंठ + जीरा
5. आंवला + सहजन + सेना + मोंठ + सरसों
6. आंवला + बेल + बैंगन + सेना + मोंठ + सरसों

अनुसंधान के प्रारम्भिक परिणाम दर्शाते हैं कि स्व–स्थानिक आंवला आधारित बहुमंजिली सस्य–क्रम योजनओं में अपनाये गये छः प्रारूपों में प्रारूप संख्या एक और छः में बैंगन जिसे कि दो आंवला के पौधों से एक मीटर की दूरी पर लगाया गया था, का आधार फल वृक्ष आंवला की वृद्धि और विकास पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा तथा बैंगन की उपज अतिरिक्त आय के रूप में प्राप्त हुई।

बेर आधारित फसल प्रणालीः बेर आधारित बहुमंजिली सस्य–क्रम योजनओं में तीन प्रारूपों पर अनुसंधान किया जा रहा हैः

1. बेर + ग्वार – सरसों
2. बेर + ग्वारपाठा
3. बेर + मूंगफली – गेहूँ

बेर आधारित प्रारूपों में निम्न तलों वाली फसलों मूंगफली, ग्वार, गेहूँ, सरसों तथा ग्वारपाठा का मुख्य आधार फल वृक्ष बेर की उपज और ओज पर धनात्मक प्रभाव पाया गया। निचले तल वाली घटक फसलों में बेर के साथ मूंगफली–गेंहू चक्र अनार्थिक जबकि ग्वारपाठा और ग्वार–सरसों आर्थिक दृष्टिकोण से उपयोगी रहे।

निष्कर्ष

बढ़ती जनसंख्या वृद्धि के कारण हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव ने हमारे पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र में बड़े पैमाने पर गिरावट ला दी है, इसलिए 21वीं सदी की खाद्य, फाइबर, जलाऊ लकड़ी और इमारती लकड़ी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए फ़सल विविधिकरण में नए दृष्टिकोणों की तलाश करने के लिए तत्काल ध्यान देने की ज़रूरत है।

एआई (AI), एमएल (ML) और आईओटी (IoT) प्रौद्योगिकी के साथ स्मार्ट शहरी बागवानी खेती

एम. हसन, ए.एम. त्रिपाठी, विनोद कुमार और अंजनी कुमार यादव
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

स्मार्ट शहरी बागवानी खेती आधुनिक तकनीकों की मदद से शहरी और उप–शहरी क्षेत्रों में उच्च मूल्य की बागवानी फसलों को उगाने से संबंधित है। उच्च मूल्य की बागवानी फसलें, जैसे सब्जियाँ, फूल, जड़ी–बूटियाँ और नवोदि्भद–पौधे, स्मार्ट शहरी खेती के तहत वर्ष भर या बे–मौसम उगाई जा सकती हैं। इसे खुले खेत, संरक्षित संरचनाओं, छतों, बालकनियों, रसोई उद्यान और यहाँ तक कि बंद कमरे के अंदर भी अपनाया जा रहा है। इसे कृत्रिम प्रकाश के साथ या बिना अपनाया जा सकता है। स्मार्ट शहरी खेती में कई आधुनिक तकनीकों का उपयोग होता है, जो मुख्य रूप से ऊर्जा, पानी, बीज, उर्वरक और अन्य रसायनों जैसे महंगे इनपुट्स के कुशल नियंत्रण और प्रबंधन के लिए हैं। मूल्य श्रृंखला आधारित कुशल विपणन प्रणाली, स्मार्ट शहरी खेती का एक महत्वपूर्ण घटक है। स्मार्ट शहरी खेती के ये दो महत्वपूर्ण घटक मुख्य रूप से बड़े शहरों में युवाओं और आम नागरिकों को इसे बड़े पैमाने पर अपनाने के लिए आकर्षित कर रहे हैं। इस प्रकार की खेती समानांतर रूप से सुरक्षित भोजन उगाने में मदद करती है, जिसमें व्यक्ति की स्वयं की भागीदारी होती है और यह अक्सर घर के भीतर सीमित स्थान में भी संभव है। यह प्रदूषण नियंत्रण में मदद करती है और विशेष पौधों को उगाकर प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन की आपूर्ति और कई हानिकारक गैसों को नियंत्रित करने में सहायक होती है। यही मुख्य कारण है कि कोविड के बाद के युग में स्मार्ट शहरी खेती तकनीक को बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है। स्मार्ट शहरी खेती हमें अपने परिवार और समाज के लिए सुरक्षित और उच्च मूल्य की बागवानी फसलें उगाने का अवसर प्रदान करती है। स्मार्ट शहरी खेती के विभिन्न पहलुओं से जुड़े कई स्टार्टअप अब बड़े शहरों में तेजी से फल–फूल रहे हैं।

स्मार्ट शहरी बागवानी खेती में महत्वपूर्ण आधुनिक तकनीकें निम्नलिखित हैः

- संरक्षित खेती तकनीक
- टपक सिंचाई और फर्टिगेशन
- मृदा रहित खेती तकनीक
- हाइड्रोपोनिक्स, एयरोपोनिक्स और एक्वापोनिक्स
- मशीन लर्निंग (ML), आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), ऑटोमेशन, सेंसर, कंट्रोलर और आईओटी (IoT)
- ऊर्ध्वाधर खेती

आकृतिः आईओटी और सेंसर संचालित ग्रीनहाउस स्मार्ट शहरी खेती, आईसीएआर–आईएआरआई, पूसा।

स्मार्ट शहरी बागवानी खेती के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैः

- वर्षभर उच्च मूल्य की बागवानी फसलें उगाने की संभावना
- ऑफ–सीजन में उच्च मूल्य की बागवानी फसलें उगाने की उपलब्धता
- इनपुट्स का कुशल नियंत्रण और प्रबंधन
- उच्च मूल्य की बागवानी फसलों का सुरक्षित और रसायन–मुक्त उत्पादन

- स्वस्थ और पर्यावरण के अनुकूल वातावरण का निर्माण
- उच्च मूल्य की बागवानी फसलें उगाने में व्यक्तिगत भागीदारी

संरक्षित खेती तकनीक के तहत स्मार्ट शहरी बागवानी खेती।

सुंरक्षित खेती पर आधारित स्मार्ट शहरी खेती उच्च गुणवत्ता और अधिक उत्पादन के साथ बागवानी फसलों और उनके पौधरोपण सामग्री के उत्पादन के लिए कई लाभ प्रदान करती है। भूमि और संसाधनों के कुशल उपयोग के माध्यम से फलों, सब्जियों और फूलों की फसलें सामान्य फसलों की तुलना में 4 से 8 गुना अधिक लाभ देती हैं। यह मुनाफा/लाभ अंतर कई गुना बढ़ सकता है यदि इन उच्च मूल्य वाली फसलों को संरक्षित परिस्थितियों जैसे ग्रीनहाउस, नेट हाउस, टनल, शेड नेट आदि के तहत उगाया जाए।

स्मार्ट शहरी खेती के लिए सामान्य रूप से उपयोग की जाने वाली संरक्षित संरचनाएं निम्नलिखित हैः

- प्राकृतिक रूप से हवादार ग्रीनहाउस
- जलवायु नियंत्रित ग्रीनहाउस
- कीट प्रूफ नेट हाउस
- शेड नेट हाउस
- टनल–प्रकार ग्रीनहाउस
- वर्षा शरण

इन सभी संरक्षित संरचनाओं का उपयोग मृदा या मृदा रहित प्रणाली के आधार पर, एकल और बहु–परतों में स्मार्ट शहरी खेती अपनाने के लिए किया जा सकता है। उगाने की प्रणाली को विशेष आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित और आसानी से निर्मित किया जा सकता है। इस प्रकार की कृषि उत्पादन प्रणाली शहरी और उप–शहरी क्षेत्रों में आय और रोजगार का अधिक लाभकारी स्रोत प्रदान कर सकती है। सब्जियों और कटे हुए फूलों में फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान की मात्रा (20–30%) काफी अधिक होती है, जिसे सुरक्षित खेती तकनीकों के माध्यम से सालभर फसल लेने पर काफी हद तक कम किया जा सकता है। सुंरक्षित खेती का उद्यमशील मूल्य बहुत अधिक होता है और यह लाभ को अधिकतम करने के साथ–साथ स्थानीय रोजगार, सामाजिक सशक्तिकरण और किसानों की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहायक होती है। पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित पद्धतियां, जिनमें जीएपी (गुड एग्रीकल्चर प्रैक्टिस) और आईपीएम (इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट) रणनीतियां शामिल होती हैं, उच्च मूल्य उत्पादों से जुड़े खतरों को कम करती हैं।

मशीन लर्निंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सेंसर और आईओटी के उपयोग द्वारा शहरी खेती का सतत प्रबंधन।

मशीन लर्निंग (ML), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) आधारित ऑटोमेशन हाल ही में ग्रीनहाउस और शहरी खेती मॉडल को नियंत्रित करने के लिए सबसे सफल दृष्टिकोण रहे हैं। ये तकनीकें उच्च मूल्य की सब्जियों, फूलों और पौधों के गुणवत्तापूर्ण उत्पादन को अधिकतम करने और संबंधित व्यावसायिक मॉडलों को कुशलतापूर्वक नियंत्रित करने में मदद करती हैं। ये नवीनतम तकनीकें मानव विशेषज्ञता, सेंसर, ऑनलाइन और इन–सिटू डेटा, विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सॉफ़्टवेयर और हार्डवेयर को समाहित और एकीकृत करती हैं, ताकि संबंधित सभी इनपुट्स का कुशल प्रबंधन किया जा सके और गुणवत्ता और मात्रा दोनों के संदर्भ में उत्पादन को अधिकतम किया जा सके। स्मार्ट, कुशल और सटीक कृषि का भविष्य मुख्य रूप से आईओटी (IoT) और एआइ (AI) से जुड़े स्वचालन (ऑटोमेशन) पर आधारित है।

स्मार्ट शहरी खेती में सामान्य रूप से उपयोग किए जाने वाले सेंसर निम्नलिखित हैः

- जलवायु सेंसर
- फर्टिगेशन सेंसर
- पानी की गुणवत्ता सेंसर
- रोग निगरानी सेंसर
- पौधों के सेंसर
- पत्तियों के सेंसर

आईसीएआर–आईएआरआई, पूसा, दिल्ली, स्मार्ट शहरी खेती तकनीक के विभिन्न पहलुओं पर शोध, शिक्षा और प्रशिक्षण में अग्रणी संस्थानों में से एक है। इसमें सॉयललेस वर्टिकल हाइड्रोपोनिक्स आधारित खेती को भी शामिल किया गया है, जिसे संरक्षित खेती तकनीक केंद्र (CPCT) में विकसित किया गया है। सॉयललेस, हाइड्रोपोनिक्स, एयरोपोनिक्स और बहु–स्तरीय वर्टिकल खेती के लिए स्वदेशी संरचनाएं विकसित, स्थापित और मूल्यांकित की गई हैं, जिनमें स्वचालन (ऑटोमेशन) और आईओटी (IoT) विकास सहित सेंसर तकनीकों में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की गई हैं। आईसीएआर–आईएआरआई द्वारा स्मार्ट शहरी खेती से संबंधित तकनीक के प्रसार के लिए "बागवाने फसलो के लिए हाइड्रोपोनिक्स तकनिके" (TB-ICN:188/2018), "स्मार्ट शहरी कृषि प्राद्योगिकी" (TB-ICN:270/2022- English) एवं (TB-ICN:H-195/2022-Hindi) शीर्षक वाली तकनीकी बुलेटिन प्रकाशित की हैं।

आकृतिः किसान मेला, आईसीएआर–आईएआरआई, पूसा, दिल्ली में प्रदर्शित स्मार्ट शहरी वर्टिकल फार्मिंग मॉडल

भारत सरकार की स्मार्ट शहरी खेती को बढ़ावा देने की पहलः

स्मार्ट शहरी खेती भारतीय कृषि के लिए बड़े अवसर प्रदान करती है। यह किसानों की आय को दोगुना करने की एक संभावित तकनीक है। बदलते खाद्य आदतों और हरी सब्जियों, जड़ी–बूटियों और फलों के बढ़ते प्रचलन के साथ, हाइड्रोपोनिक्स तकनीक शहरी और उप–शहरी क्षेत्रों में सतत और वर्षभर उत्पादन के लिए एक प्रमुख भूमिका निभाने वाली है। यद्यपि, यह तकनीक पूंजी–प्रधान है और तकनीकी जानकारी की आवश्यकता होती है, सरकार ने विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से इस तकनीक को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं।

स्मार्ट शहरी खेती को बढ़ावा देने वाली प्रमुख एजेंसियाँ निम्नलिखित हैः

1. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
2. राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (NHB)
3. राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM)
4. उत्तर–पूर्व और हिमालयी राज्यों के लिए बागवानी मिशन

हाइड्रोपोनिक्स खेती के लिए संरक्षित स्थितियों में व्यावसिक उत्पादन इकाइयों की स्थापना से संबंधित क्रेडिट लिंक्ड परियोजनाओं को राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (NHB) द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इन योजनाओं का विवरण www-nhb-gov-in पर उपलब्ध है। इसके अलावा, राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM) और उत्तर–पूर्व एवं हिमालयी राज्यों के लिए बागवानी मिशन भी संरक्षित खेती पहलों के तहत हाइड्रोपोनिक्स से संबंधित परियोजनाओं को अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन प्रदान करते हैं। किसान और उद्यमी अपनी पात्रता और उपयुक्तता के आधार पर इन योजनाओं का लाभ उठा सकते हैं। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा स्मार्ट शहरी खेती मॉडलों जैसे वर्टिकल फार्मिंग, सॉयललेस, हाइड्रोपोनिक्स और एयरोपोनिक्स के लिए कृषि अवसंरचना फंड के तहत किसानों को (2 करोड़ तक का ऋण) वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है।

प्रगतिशील और संधारणीय कृषिः विकसित भारत का मार्ग

सी. वैष्णवी[1], एन.वी. कुंभारे[2], पुष्पेंद्र यादव[3] और प्रशांत. बी[4]
[1,2,3]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012
[4]जीकेवीके, कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, बैंगलोर–560 065

भारत अपनी स्वतंत्रता की 100वीं वर्षगाठ तक देश को एक विकसित राष्ट्र बनाने में सरकार के दृष्टिकोण को इंगित करता है। विकसित भारत के चार स्तंभ युवा (युवा), गरीब (गरीब), महिलाएं (महिलाएं) और अन्नदाता (किसान) हैं। विकसित भारत का दृष्टिकोण आधुनिक बुनियादी ढांचे और प्रकृति के साथ सामंजस्य में एक समृद्ध भारत का है और सभी क्षेत्रों के सभी नागरिकों को अपनी क्षमता तक पहुँचने के अवसर प्रदान करता है। यह न केवल आर्थिक विकास का एक घातक है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, बुनियादी ढांचे, प्रौद्योगिकी और पर्यावरणीय स्थिरता में प्रगति को भी शामिल करता है। "विकासशील भारत" एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ हर नागरिक को बुनियादी सुविधाएँ, विकास के अवसर और गुणवत्तापूर्ण जीवन मिल सके। इस विज़न के कार्यान्वयन के लिए सरकार, निजी क्षेत्र और नागरिक समाज को शामिल करते हुए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। आर्थिक सुधार, तकनीकी नवाचार और सामाजिक सशक्तिकरण पर केंद्रित नीतियाँ इस लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण हैं। भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होने के नाते कृषि इस यात्रा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पारंपरिक खेती को आधुनिक, टिकाऊ और कुशल कृषि पद्धतियों में बदलना जिसे "उन्नत कृषि" कहा जाता है, 2047 तक विकसित भारत के सपने को साकार करने के प्रमुख स्तंभों में से एक है।

उन्नत कृषि

उन्नत कृषि से तात्पर्य उत्पादकता, लाभप्रदता और पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ाने के लिए आधुनिक कृषि पद्धतियों, उन्नत तकनीकों और टिकाऊ खेती के तरीकों को अपनाने से है। यह 21वीं सदी में कृषि की उभरती चुनौतियों का सामना करने के लिए पारंपरिक ज्ञान को अत्याधुनिक नवाचारों के साथ एकीकृत करने पर जोर देता है। यह दृष्टिकोण सटीक खेती, जैविक विधियों, स्मार्ट सिंचाई, नवीकरणीय ऊर्जा एकीकरण, डिजिटल उपकरणों आदि पर केंद्रित है।

उन्नत कृषि के प्रमुख स्तंभ

1. आधुनिक कृषि पद्धतियाँ

- **सटीक खेतीः** सटीक खेती, जिसे सटीक कृषि के रूप में भी जाना जाता है, एक कृषि प्रबंधन दृष्टिकोण है जो दक्षता और लाभप्रदता बढ़ाने, संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने, श्रम लागत को कम करने, पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हुए कार्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए GPS, रिमोट सेंसिंग, परिवर्तनीय दर प्रौद्योगिकी, स्मार्ट कृषि सेंसर, रोबोट ड्रोन, उपग्रह इमेजरी और भविष्य कहने वाला विश्लेषण सॉफ्टवेयर आदि जैसी तकनीकों का उपयोग करता है। सटीक खेती, आधुनिक तकनीक और डेटा–संचालित अंतर्दृष्टि का लाभ उठाने वाली एक उन्नत कृषि पद्धति है, जो उन्नत कृषि को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ावा देती है। GPS, सेंसर, ड्रोन और डेटा एनालिटिक्स जैसे उपकरणों का उपयोग करके, सटीक खेती किसानों को असाधारण सटीकता के साथ अपने खेतों की निगरानी और प्रबंधन करने में सक्षम बनाती है। यह दृष्टिकोण फसल की उपज और गुणवत्ता को अधिकतम करते हुए पानी, उर्वरक और कीटनाशकों जैसे संसाधनों के अति प्रयोग को कम करता है। यह प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करके, इनपुट लागत को कम करके और मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाकर टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देता है। परिशुद्ध खेती, नवाचार और पारंपरिक ज्ञान को एकीकृत करके उन्नत कृषि के सिद्धांतों के साथ संरेखित होती है, किसानों को बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल

होने के लिए सशक्त बनाती है, और आर्थिक लाभप्रदता और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन सुनिश्चित करती है। प्रौद्योगिकी और संधारणीय प्रथाओं के बीच यह तालमेल परिशुद्ध खेती को आधुनिक कृषि उन्नति की आधारशिला बनाता है।

- **कृषि यंत्रीकरणः** कृषि यंत्रीकरण उत्पादकता बढ़ाकर, श्रम तीव्रता को कम करके और संधारणीय कृषि पद्धतियों को सुनिश्चित करके उन्नत कृषि को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यंत्रीकरण से तात्पर्य जुताई, बुवाई, सिंचाई, कटाई और कटाई के बाद के प्रबंधन सहित विभिन्न कृषि प्रक्रियाओं में मशीनरी और उन्नत उपकरणों के उपयोग से है। यह सिकुड़ते कृषि श्रम बल और बढ़ती इनपुट लागतों से उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करता है, किसानों को उनके संचालन को अनुकूलित करने के लिए कुशल समाधान प्रदान करता है। ट्रैक्टर, सीड ड्रिल, कंबाइन हार्वेस्टर और ड्रिप सिंचाई प्रणाली जैसे मशीनीकृत उपकरणों को एकीकृत करके, किसान बुवाई में सटीकता, पानी और उर्वरकों के उपयोग में एकरूपता और कटाई में समयबद्धता प्राप्त कर सकते हैं, जिससे फसल की पैदावार और गुणवत्ता में सुधार होता है। इसके अलावा, मशीनीकरण उपज के तेज़ और सुरक्षित संचालन को सक्षम करके कटाई के बाद के नुकसान को कम करता है, जो खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है।

मशीनीकरण संसाधनों की बर्बादी और पर्यावरणीय गिरावट को कम करके आधुनिक, संधारणीय कृषि के लक्ष्यों के साथ संरेखित होता है। उन्नत मशीनें, सौर ऊर्जा से चलने वाले सिंचाई पंप जैसी नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों के साथ मिलकर खेती को अधिक ऊर्जा–कुशल और लागत–प्रभावी बनाती हैं। छोटे और सीमांत किसानों के लिए, कृषि उपकरणों पर सब्सिडी, कस्टम हायरिंग सेंटर की स्थापना और मशीनरी के उपयोग पर प्रशिक्षण कार्यक्रम जैसी सरकारी पहल मशीनीकरण को बढ़ावा देने में सहायक रही हैं। मशीनीकृत खेती न केवल किसानों की आय क्षमता को बढ़ाकर आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है, बल्कि उपकरण निर्माण, मरम्मत और सेवा क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करके ग्रामीण विकास में भी योगदान देती है। इसके अतिरिक्त, मशीनीकरण को अपनाने से संरक्षण जुताई और सटीक खेती जैसी प्रथाओं को सक्षम करके जलवायु–लचीली खेती को बढ़ावा देने में मदद मिलती है, जो मिट्टी के स्वास्थ्य और जल उपयोग दक्षता में सुधार करती है। इस प्रकार, कृषि मशीनीकरण पारंपरिक खेती को आधुनिक, टिकाऊ और लचीली कृषि प्रणाली में बदलने में मदद करता है।

2. टिकाऊ खेती के तरीके

टिकाऊ खेती एक व्यापक शब्द है जिसका उपयोग समाज, पर्यावरण और अर्थव्यवस्था को पोषण देने वाले तरीकों से भोजन का उत्पादन करने के लिए किया जाता है। आज की औद्योगिक खेती की विधियाँ, जिनमें से कई 1950 और 1960 के दशक की हरित क्रांति से उपजी हैं, मोनोकल्चर और कीटनाशकों और उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के माध्यम से हमारे प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त कर रही हैं, जबकि दुनिया भर में लोगों को भोजन और पोषण तक असमान पहुँच मिल रही है। संधारणीय खेती महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आज हमारे अधिकांश भोजन को जिस तरह से उगाया जाता है, उससे होने वाली समस्याओं का समाधान प्रदान करती है। विभिन्न संधारणीय खेती प्रथाओं में कृषि वानिकी प्रथाओं को अपनाना, एकीकृत कीट और रोग प्रबंधन प्रथाओं को लागू करना, एक्वापोनिक्स और हाइड्रोपोनिक्स की ओर बढ़ना, हवा और जल प्रबंधन प्रथाओं द्वारा मिट्टी के कटाव से बचना, आनुवंशिक विविधता बनाए रखने के लिए पुरानी किस्मों को उगाना, पशुधन, मुर्गी पालन आदि जैसे संबद्ध क्षेत्रों के साथ कृषि को एकीकृत करना, संपूर्ण प्रणालियों और परिदृश्यों का प्रबंधन करना, पर्माकल्चर, पॉलीकल्चर खेती, फसल चक्रण इस प्रकार विविधता को अपनाना, सीढ़ीदार और शहरी खेती शामिल हैं।

- **जैविक खेतीः** जैविक खेती एक कृषि प्रणाली है जो फसलों की खेती और पशुधन पालन के लिए प्राकृतिक इनपुट और पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं के उपयोग पर जोर देती है। यह रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों (जीएमओ) और

रासायनिक योजकों से बचता है, इसके बजाय फसल चक्र, हरी खाद, खाद और जैविक कीट नियंत्रण जैसे संधारणीय प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित करता है। जैविक खेती का मुख्य सिद्धांत प्रकृति के साथ सामंजस्य में काम करना, मिट्टी की उर्वरता को बढ़ावा देना, जैव विविधता का संरक्षण करना और पारिस्थितिकी तंत्र के दीर्घकालिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करना है। जैविक पदार्थों के साथ मिट्टी का पोषण करके और हानिकारक हस्तक्षेपों को कम करके, जैविक खेती एक आत्मनिर्भर चक्र बनाती है जो पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाती है।

उन्नत कृषि का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का समाधान करते हुए उत्पादकता को पारिस्थितिक संरक्षण के साथ संतुलित करना है। जैविक खेती मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाकर, जल प्रदूषण को कम करके और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके इस दृष्टिकोण का समर्थन करती है। यह महंगे रासायनिक इनपुट पर निर्भरता को कम करके और घरेलू, अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में जैविक उपज की बढ़ती मांग का लाभ उठाकर किसानों के बीच आर्थिक लचीलापन भी बढ़ाता है। पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक पारिस्थितिकी सिद्धांतों के साथ एकीकृत करके, जैविक खेती किसानों को बेहतर उपज प्राप्त करने, उनकी उपज के पोषण मूल्य में सुधार करने और दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने में मदद करती है। यह बदले में, ग्रामीण आजीविका, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण में योगदान देता है, जो विकासशील भारत के सार को दर्शाता है।

- **कृषि वानिकी**: कृषि वानिकी एक संधारणीय भूमि उपयोग प्रणाली है जो उत्पादकता को अधिकतम करने, जैव विविधता को बढ़ाने और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए भूमि के एक ही भूखंड पर पेड़ों, फसलों और पशुधन को एकीकृत करती है। यह प्राकृतिक पोषक चक्रण के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता को समृद्ध करता है, रासायनिक इनपुट पर निर्भरता को कम करता है और कृषि आय में विविधता लाता है। कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा देने और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ प्रदान करके, यह संधारणीय खेती का समर्थन करता है और पर्यावरण के प्रति जागरूक और संसाधन–कुशल कृषि के सिद्धांतों के साथ संरेखित होता है।
- **प्राकृतिक खेती और पर्माकल्चर**: प्राकृतिक खेती और पर्माकल्चर संधारणीय कृषि पद्धतियाँ हैं जो प्रकृति के साथ सामंजस्य में काम करती हैं, सिंथेटिक इनपुट से बचती हैं और पारिस्थितिक संतुलन पर ध्यान केंद्रित करती हैं। प्राकृतिक खेती, जिसे अक्सर मासानोबू फुकुओका के दर्शन से जोड़ा जाता है, मिट्टी को समृद्ध करने के लिए न्यूनतम मानवीय हस्तक्षेप, बिना जुताई के तरीकों और प्राकृतिक खाद और कवर फसलों के उपयोग पर जोर देती है। दूसरी ओर, पर्माकल्चर नैतिकता और सिद्धांतों पर आधारित एक डिज़ाइन प्रणाली है जिसका उद्देश्य कृषि को जल संरक्षण, फसल विविधीकरण और कृषि वानिकी जैसे प्राकृतिक पैटर्न के साथ एकीकृत करके आत्मनिर्भर पारिस्थितिकी तंत्र बनाना है। दोनों ही तरीके मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाकर, बाहरी इनपुट पर निर्भरता को कम करके, जैव विविधता में सुधार करके और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन बढ़ाकर उन्नत कृषि को बढ़ावा देते हैं। ये तरीके किसानों को कम लागत में अधिक उत्पादकता प्राप्त करने और पारिस्थितिकी स्वास्थ्य को बनाए रखने में सक्षम बनाते हैं, जिससे वे पारंपरिक खेती के तरीकों के लिए एक व्यवहार्य और टिकाऊ विकल्प बन जाते हैं।

3. जल प्रबंधन

जल प्रबंधन जल संसाधनों के कुशल उपयोग को सुनिश्चित करके, फसल उत्पादकता को बढ़ाकर और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखकर उन्नत खेती को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिस्टम और वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकें पानी के उपयोग को अनुकूलित करने, बर्बादी को कम करने और यह सुनिश्चित करने में मदद करती हैं कि फसलों को पर्याप्त नमी मिले। मल्चिंग और संरक्षण जुताई जैसी प्रथाएँ पानी के वाष्पीकरण को कम करती हैं और मिट्टी की नमी

को बनाए रखती हैं। जल प्रबंधन में चेक डैम, खेत तालाब और समोच्च बांध जैसी संरचनाएँ बनाना और साथ ही जल प्रवाह को संग्रहीत और विनियमित करने के लिए वर्षा जल प्रबंधन तकनीकों का अभ्यास करना भी शामिल है, खासकर वर्षा आधारित क्षेत्रों में। फसल नियोजन के साथ जल प्रबंधन को एकीकृत करके, जैसे कि सूखा प्रतिरोधी किस्मों को उगाना या फसल चक्र का अभ्यास करना, किसान परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हो सकते हैं। ये प्रथाएँ न केवल उपज बढ़ाती हैं बल्कि बाहरी जल स्रोतों पर निर्भरता को भी कम करती हैं, जिससे खेती अधिक लचीली, लागत प्रभावी और टिकाऊ बनती है और बदले में किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

- **स्मार्ट सिंचाई प्रणालीः** एक स्मार्ट सिंचाई प्रणाली जिसमें ड्रिप, स्प्रिंकलर शामिल हैं, एक उन्नत कृषि तकनीक है जिसे सही समय पर फसलों को सही मात्रा में पानी पहुँचाकर पानी के उपयोग को अनुकूलित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। ये सिस्टम मिट्टी की नमी, मौसम की स्थिति और फसल की पानी की ज़रूरतों पर नज़र रखने के लिए सेंसर, मौसम पूर्वानुमान और स्वचालन का उपयोग करते हैं। पानी की बर्बादी को कम करके और कुशल सिंचाई सुनिश्चित करके, स्मार्ट सिस्टम टिकाऊ खेती के तरीकों का समर्थन करते हैं। यह संसाधनों को संरक्षित करने, फसल उत्पादकता बढ़ाने और किसानों के लिए इनपुट लागत को कम करने में मदद करता है। इसके अलावा, स्मार्ट सिंचाई पानी की कमी को कम करके और अत्यधिक सिंचाई को रोककर पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देती है, जिससे मिट्टी का क्षरण और पोषक तत्वों की हानि हो सकती है। ऐसे नवाचारों के माध्यम से, किसान पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखते हुए बेहतर पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

4. नवीकरणीय ऊर्जा एकीकरण

कृषि में नवीकरणीय ऊर्जा एकीकरण ऊर्जा दक्षता को बढ़ाकर, जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करके और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके संधारणीय कृषि को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ावा देता है। सौर ऊर्जा से चलने वाली सिंचाई प्रणाली और पवन ऊर्जा समाधान किसानों को खेती की गतिविधियों के लिए लागत प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा तक पहुँचने में सक्षम बनाते हैं। ये प्रौद्योगिकियाँ जल संरक्षण, संसाधन उपयोग को अनुकूलित करने और उत्पादन लागत को कम करने में मदद करती हैं, जिससे कृषि अधिक संधारणीय बनती है। इसके अतिरिक्त, नवीकरणीय ऊर्जा ग्रामीण विद्युतीकरण का समर्थन करती है, कटाई के बाद भंडारण और मूल्य संवर्धन में सुधार करती है, जबकि उन्नत कृषि के सिद्धांतों के साथ संरेखित करते हुए, पर्यावरणीय प्रबंधन और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन को बढ़ावा देती है।

- **कृषि में सौर और पवन ऊर्जाः** सौर और पवन ऊर्जा को सौर या पवन ऊर्जा से चलने वाले सिंचाई पंप, कोल्ड स्टोरेज सिस्टम, लाइटिंग, बाड़, सौर ड्रायर आदि जैसे अभिनव अनुप्रयोगों के माध्यम से कृषि में सहज रूप से एकीकृत किया गया है। ये प्रौद्योगिकियाँ जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करती हैं, परिचालन लागत को कम करती हैं और पर्यावरणीय प्रभाव को कम करती हैं। सौर, पवन ऊर्जा खेती प्राकृतिक संसाधनों को कम किए बिना उत्पादकता बढ़ाने के लिए नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग करके संधारणीय कृषि प्रथाओं का भी समर्थन करती है। यह पर्यावरण अनुकूल तरीकों को बढ़ावा देता है और लागत प्रभावी समाधानों के साथ किसानों को सशक्त बनाता है, इस प्रकार आवश्यक कार्यों के लिए निर्बाध बिजली आपूर्ति सुनिश्चित करके कृषि में लचीलापन बढ़ाता है, फसल की गुणवत्ता में सुधार करता है, और ग्रामीण समुदायों के लिए एक स्थायी आजीविका प्रदान करता है।
- **बायोगैस संयंत्रः** बायोगैस संयंत्र ऐसी प्रणालियाँ हैं जो जानवरों के गोबर, फसल अवशेषों और रसोई के कचरे जैसे जैविक अपशिष्टों को अवायवीय पाचन के माध्यम से बायोगैस में परिवर्तित करती हैं। बायोगैस में मुख्य रूप से मीथेन होता है, जिसका उपयोग खाना पकाने, रोशनी करने और बिजली पैदा करने के लिए स्वच्छ ईंधन के रूप में किया जा सकता है। इस प्रक्रिया का उपोत्पाद, जिसे डाइजेस्टेट के रूप में जाना जाता है, पोषक तत्वों से भरपूर जैविक घोल है जो फसलों

के लिए एक उत्कृष्ट उर्वरक के रूप में कार्य करता है। कृषि में, बायोगैस संयंत्र दोहरी भूमिका निभाते हैंः वे कृषि अपशिष्टों का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करते हैं और अक्षय ऊर्जा प्रदान करते हैं, जिससे पारंपरिक जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम होती है। यह एकीकरण पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देकर प्रगतिशील खेती के सिद्धांतों के अनुरूप है। डाइजेस्टेट के उपयोग से मिट्टी की सेहत में सुधार होता है, फसल की पैदावार बढ़ती है और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण कम होता है। इसके अतिरिक्त, बायोगैस संयंत्र अपशिष्टों को पुनर्चक्रित करके और मूल्य बनाकर खेती में परिपत्र अर्थव्यवस्था में योगदान करते हैं, जो अंततः टिकाऊ कृषि विकास का समर्थन करता है।

5. कृषि में डिजिटल परिवर्तन

कृषि में डिजिटल परिवर्तन से तात्पर्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), बिग डेटा और मोबाइल प्लेटफ़ॉर्म जैसी उन्नत तकनीकों को कृषि पद्धतियों में एकीकृत करने से है, ताकि उत्पादकता, स्थिरता और लाभप्रदता को बढ़ाया जा सके। यह परिवर्तन सटीक खेती, फसलों की वास्तविक समय की निगरानी, मौसम और मिट्टी की स्थिति के लिए पूर्वानुमानित विश्लेषण और कुशल संसाधन प्रबंधन को सक्षम बनाता है। अंततः, डिजिटल परिवर्तन कृषि पद्धतियों को स्थिरता लक्ष्यों के साथ जोड़ता है, जो पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीक के मिश्रण के रूप में उन्नत कृषि के दृष्टिकोण का समर्थन करता है।

- **मोबाइल एप्लीकेशनः** मोबाइल एप्लीकेशन किसानों को उत्पादकता और दक्षता बढ़ाने वाली महत्वपूर्ण जानकारी और उपकरणों तक वास्तविक समय में पहुँच प्रदान करके प्रगतिशील खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये ऐप मौसम पूर्वानुमान, फसल प्रबंधन युक्तियाँ, कीट और रोग पहचान, बाजार मूल्य अपडेट और संसाधन अनुकूलन रणनीतियों जैसी सुविधाएँ प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, वे किसानों, कृषि विशेषज्ञों और आपूर्तिकर्ताओं के बीच संचार की सुविधा प्रदान करते हैं, जिससे ज्ञान साझा करने और समय पर निर्णय लेने में मदद मिलती है। GPS–सक्षम उपकरणों के साथ, किसान मिट्टी विश्लेषण, सिंचाई शेड्यूलिंग और फ़ील्ड मैपिंग जैसी सटीक कृषि पद्धतियों को लागू कर सकते हैं। आधुनिक तकनीक को एकीकृत करके, मोबाइल एप्लीकेशन किसानों को सूचित निर्णय लेने, लागत कम करने और पैदावार बढ़ाने के लिए सशक्त बनाते हैं, जो टिकाऊ और लाभदायक कृषि पद्धतियों में योगदान करते हैं।
- **AI और बिग डेटा एनालिटिक्सः** AI और बिग डेटा एनालिटिक्स सटीक कृषि को सक्षम करके प्रगतिशील खेती में क्रांति ला रहे हैं, जो संसाधनों का अनुकूलन करता है और उत्पादकता को बढ़ाता है। AI- संचालित उपकरणों के माध्यम से, किसान मिट्टी के स्वास्थ्य, फसल की स्थिति और मौसम के पैटर्न की निगरानी करने के लिए सेंसर, उपग्रहों और ड्रोन से वास्तविक समय के डेटा का विश्लेषण कर सकते हैं। बिग डेटा एनालिटिक्स फसल की पैदावार की भविष्यवाणी करने, कीटों या बीमारियों की पहचान करने और सिंचाई और निषेचन कार्यक्रम को अनुकूलित करने के लिए विशाल मात्रा में कृषि डेटा को संसाधित करने में मदद करता है। ये प्रौद्योगिकियां अपशिष्ट को कम करती हैं, निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाती हैं, और स्थिरता में सुधार करती हैं, जिससे किसानों को जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियों का सामना करने में सशक्त बनाया जाता है, साथ ही उनकी दक्षता और लाभप्रदता को भी अधिकतम किया जाता है।
- **ड्रोन और रोबोटिक्सः** ड्रोन का उपयोग फसल निगरानी, कीट और रोग का पता लगाने और उर्वरकों और कीटनाशकों के सटीक छिड़काव के लिए किया जाता है, जिससे संसाधनों की बर्बादी और पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है। वे उच्च–रिज़ॉल्यूशन वाली हवाई तस्वीरें और वास्तविक समय के डेटा प्रदान करते हैं, जिससे किसान सूचित निर्णय लेने में सक्षम होते हैं। दूसरी ओर, रोबोटिक्स, रोपण, निराई और कटाई जैसे श्रम–गहन कार्यों को स्वचालित करता है, उत्पादकता में सुधार करता है और मैनुअल श्रम पर निर्भरता को कम करता है। साथ में, ये प्रौद्योगिकियाँ किसानों

को स्मार्ट खेती के तरीकों को अपनाने, पैदावार को अनुकूलित करने और सतत कृषि विकास में योगदान करने के लिए सशक्त बनाती हैं।

6. कृषि उन्नति योजना के तहत शामिल योजनाएँ

"हरित क्रांति – कृषोन्ति योजना" कृषि क्षेत्र में एक अम्ब्रेला योजना है जिसे 2016–17 से कई योजनाओं/मिशनों को एक अम्ब्रेला योजना के तहत जोड़कर लागू किया गया है। इस योजना को अब 2017–18 से 2019–20 की अवधि के लिए 33,269.9 करोड़ रुपये के केंद्रीय हिस्से के साथ जारी रखा गया है। अम्ब्रेला योजना में 11 योजनाएं/मिशन शामिल हैं।

1. बागवानी के एकीकृत विकास के लिए मिशन (MIDH)
2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)
3. सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन (NMSA)
4. कृषि विस्तार पर उप–मिशन (SMAE)
5. बीज और रोपण सामग्री पर उप–मिशन (SMSP)
6. कृषि यंत्रीकरण पर उप–मिशन (SMAM)
7. पौध संरक्षण और पौधे संगरोध पर उप–मिशन (SMPPQ)
8. कृषि जनगणना, अर्थशास्त्र और सांख्यिकी पर एकीकृत योजना (ISACES)
9. कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना (ISAC)
10. कृषि विपणन पर एकीकृत योजना (ISAM)
11. राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना (NeGP-A)

उन्नत कृषि को बढ़ावा देने वाली अन्य योजनाएँ

भारत सरकार ने उन्नत कृषि को बढ़ावा देने और सतत कृषि विकास सुनिश्चित करने के लिए कई पहल शुरू की हैं। कुछ प्रमुख पहलों में शामिल हैं:

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY): जल–उपयोग दक्षता प्राप्त करने और किसानों को जल उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई सुविधाओं में सुधार पर ध्यान केंद्रित करती है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन (SHM): यह पहल किसानों को मृदा परीक्षण का उपयोग करने और मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने, फसल की पैदावार बढ़ाने और स्थिरता के लिए संतुलित उर्वरकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

सतत कृषि पर राष्ट्रीय मिशन: प्रौद्योगिकी, जैविक खेती और जलवायु–लचीले प्रथाओं को एकीकृत करके स्थायी कृषि प्रथाओं को बढ़ावा देने का लक्ष्य रखता है।

परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY): जैविक इनपुट को बढ़ावा देकर, किसानों को प्रशिक्षित करके और जैविक क्लस्टर बनाकर जैविक खेती का समर्थन करती है।

किसान क्रेडिट कार्ड (KCC): किसानों को कृषि इनपुट खरीदने के लिए ऋण तक आसान पहुँच प्रदान करता है, जो उन्हें ड्रोन और रोबोटिक्स जैसी नई तकनीकों को अपनाने में मदद करता है।

राष्ट्रीय कृषि बाजार (eNAM): एक ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म जो किसानों को खरीदारों से जोड़ता है, बेहतर मूल्य निर्धारण और पारदर्शी बाज़ार संचालन को बढ़ावा देता है।

आत्मनिर्भर भारत अभियान: वित्तीय सहायता प्रदान करके और कृषि प्रौद्योगिकियों में नवाचार को सुविधाजनक बनाकर कृषि क्षेत्र में सुधार लाने पर ध्यान केंद्रित करता है।

एग्री–टेक इनक्यूबेटर और स्टार्ट–अप प्रमोशन: सरकार कृषि में सटीक खेती, ड्रोन और रोबोटिक्स जैसी नई तकनीकों को विकसित करने और लागू करने के लिए एग्रीटेक स्टार्टअप को बढ़ावा दे रही है।

पीएम–कुसुम (प्रधानमंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान) योजना का उद्देश्य भारत में किसानों के लिए ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करना है, साथ ही गैर–जीवाश्म–ईंधन स्रोतों से बिजली की स्थापित क्षमता के हिस्से को 2030 तक 40% तक बढ़ाने के लिए भारत की प्रतिबद्धता का सम्मान करना है, जो कि राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (आईएनडीसी) का हिस्सा है।

नमो ड्रोन दीदी योजना: 2024–25 से 2025–2026 की अवधि के दौरान 15000 चयनित महिला एसएचजी को ड्रोन प्रदान करके महिलाओं के नेतृत्व वाले स्वयं

सहायता समूहों (एसएचजी) को सशक्त बनाने का लक्ष्य है, ताकि किसानों को कृषि उद्देश्य के लिए किराये की सेवाएं प्रदान की जा सकें। इस पहल से कम से कम 15 लाख रुपये की अतिरिक्त आय उत्पन्न होने की उम्मीद है। प्रत्येक एसएचजी को प्रति वर्ष 1 लाख रुपये की सहायता दी जाएगी, जिससे आर्थिक सशक्तिकरण और सतत आजीविका सृजन में योगदान मिलेगा।

राष्ट्रीय गोकुल मिशन (आरजीएम): देशी गोजातीय नस्लों के संरक्षण और विकास, गोकुल ग्राम की स्थापना और कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रमों के लिए समर्थन पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

डेयरी उद्यमिता विकास योजना (डीईडीएस): डेयरी फार्मिंग में स्वरोजगार के अवसरों को बढ़ावा देती है और डेयरी इकाइयों की स्थापना, दूध प्रसंस्करण और मूल्यवर्धित उत्पाद विनिर्माण के लिए सब्सिडी और ऋण प्रदान करती है।

पशुपालन अवसंरचना विकास निधि (एएचआईडीएफ): डेयरी अवसंरचना में निजी निवेश को प्रोत्साहित करती है और दूध प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और पशु आहार के लिए अवसंरचना के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

भविष्य रणनिति

उन्नत कृषि के माध्यम से विकासशील भारत के विजन को प्राप्त करने के लिए, एक बहु–हितधारक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। सरकार को सिंचाई, भंडारण और डिजिटल कनेक्टिविटी जैसे बुनियादी ढांचे को बढ़ाते हुए, टिकाऊ कृषि और जलवायु–लचीले तरीकों को बढ़ावा देने वाली समावेशी नीतियां बनानी चाहिए। निजी खिलाड़ी कृषि–तकनीक स्टार्टअप को बढ़ावा देकर और ड्रोन और एआई जैसी सस्ती तकनीकों का प्रसार करके नवाचार को बढ़ावा दे सकते हैं। किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) को मजबूत करना, केसीसी जैसी योजनाओं के माध्यम से वित्तीय सहायता प्रदान करना और ईएनएएम जैसे प्लेटफार्मों के माध्यम से बाजार तक पहुंच सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है। सामुदायिक भागीदारी, क्षमता निर्माण और सार्वजनिक–निजी भागीदारी किसानों को सशक्त बना सकती है, जिससे भारत के विकास के लिए कृषि अधिक उत्पादक, टिकाऊ और न्यायसंगत बन सकती है।

निष्कर्ष

उन्नत कृषि केवल कृषि समृद्धि का मार्ग नहीं है, बल्कि भारत के समग्र विकास की आधारशिला है। किसानों को सशक्त बनाकर, टिकाऊ तरीकों को अपनाकर और तकनीक का लाभ उठाकर, भारत अपने कृषि परिदृश्य को बदल सकता है और विकसित भारत के विजन को प्राप्त कर सकता है। इस विजन को साकार करने के लिए सरकार, निजी क्षेत्र और किसानों को शामिल करने वाला एक सहयोगी प्रयास समय की मांग है। विकसित भारत की यात्रा उन्नत और टिकाऊ कृषि के बीज से शुरू होती है।

पुष्प उद्योग में कर्तित पत्तियों की भूमिका

ऋतु जैन, बबीता सिंह, ऐ.के. तिवारी एवं एम. के. सिंह
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

पुष्पोत्पादन उद्योग जीवनशैली बागवानी उद्योग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह उद्योग 300 बिलियन अमरीकी डॉलर;लगभग 24 लाख 69 हजार करोड़ रुपये का है। अनुमान है कि वर्ष 2030 तक यह उद्योग 70 बिलियन अमरीकी डॉलर; लगभग 5 लाख 75 हजार करोड़ रुपये का हो जाएगा जिसकी वार्षिक संचयी वृद्धि दर (CAGR) 8.8% होगी। भारत में फूलों की खेती एक प्राचीन परंपरा है और यह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। फूल न केवल सौंदर्य और सुगंध के प्रतीक हैं बल्कि धार्मिक और सामाजिक आयोजनों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में भारतीयों में फूलों से भावनाओं को व्यक्त करने की एक नई रिवाज विकसित हुई है, जिसके चलते लोग अपने प्रियजनों के लिए फूल भेजते हैं और फूलों को उपहार के रूप में देते हैं। भारत में 50 से अधिक शहरी क्षेत्र हैं जिनकी आबादी 1 मिलियन से अधिक है, इन शहरी केंद्रों में फूलों की मांग लगातार बढ़ रही है। भारत 5 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है। भारत में लोगों की खर्चीली आय बढ़ रही है, जिससे फूलों की खपत पर खर्च करना संभव हो रहा है। ऑनलाइन बाजारों का उदय फूलों की बिक्री को आसान बना रहा है। बी2बी; व्यवसाय से व्यवसाय और बी2सी; व्यवसाय से उपभोक्ता दोनों ही मॉडल फूलों की बिक्री के लिए उपयोग किए जा रहे हैं।

भारत में अधिकांश राज्यों में फूलों की खेती लगभग सभी राज्यों में किसी न किसी रूप में की जाती है। देश के विभिन्न हिस्सों में उपलब्ध विविध कृषि जलवायु, विभिन्न प्रकार के फूलों की खेती को संभव बनाता है। सक्रिय नीतियां कई राज्य सरकारें और केंद्र सरकार फूलों की खेती को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नीतियां और योजनाएं लागू कर रही हैं। ये नीतियां किसानों और उद्यमियों के लिए फूलों की खेती को आकर्षक बनाती हैं। इन सभी कारकों से पता चलता है कि फूलों की खेती भारत में एक महत्वपूर्ण और लाभदायक क्षेत्र है। इससे न केवल किसानों को लाभ होगा बल्कि यह देश की अर्थव्यवस्था को भी बढ़ावा देगा।

पुष्प उच्च मूल्य की बागवानी फसल है जो किसानों को अच्छी आय प्रदान करती है। पुष्प उद्योग पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस, हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग करता है। इससे उच्च गुणवत्ता वाले फूलों का उत्पादन संभव होता है। फूलों की खेती ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में रोजगार पैदा करती है। पुष्प उत्पादन एक अंतर्राष्ट्रीय, उद्योग है जिसमें कर्तित फूल (कट फ्लावर), खुले फूल (लूज फ्लावर) बेडिंग पौधे, अलंकृत पत्तियों वाले पौधे, सूखे फूल, लान घास, फिलर्स, कर्तित पत्तियाँ आदि शामिल हैं। विभिन्न प्रकार के फूल एवं अलंकृत पौधे घरेलू बाज़ार मे बेचने के साथ साथ निर्यात भी किए जाते हैं। कई देश जैसे नीदरलैंड्स, कोलंबिया, केन्या आदि फूलों के बड़े निर्यातक हैं। फूल उद्योग में सजावटी कर्तित पत्तियों का भी प्रमुख स्थान है। आधुनिक फूल उद्योग में कर्तित पत्तियों का उद्योग एक अभिन्न अंग है जो कई देशों में एक उत्कृष्ट उद्योग के रूप में उभरा है। बाज़ार मे मंदी के दौरान यह पत्तियाँ फूलों के विकल्प के रूप में पर्याप्त क्षमता रखती हैं। हॉलैंड से प्राप्त एक सांख्यिकी के अनुसार, 10 वर्ष पहले केवल 5.0% कर्तित पत्तों का उपयोग फूलों के गुलदस्तों को बनाने मे होता था जो अब बढ़कर 25–30% हो गया हैं। आने वाले वर्षों में पुष्प उत्पादों की खपत में वृद्धि के पूर्वानुमान के कारण इस प्रवृत्ति में और अधिक वृद्धि होने की उम्मीद है।

कर्तित पत्ती या कट ग्रीन का उपयोग ताजा फूलों के डिजाइन, सजावट, जैसे गुलदस्ते, पुष्पमालाएं, पुष्प गुच्छ,

पुष्प व्यवस्था (फ्लावर अरेंजमेंट), भवन के अंदरूनी हिस्सों की सजावट का आकार और आयतन बढ़ाने, रंग कंट्रास्ट प्रदान करने तथा आकर्षण बढ़ाने के लिए किया जाता है। सामान्यतः हरे, चांदी या रंगीन पत्तों वाले सदाबहार पौधों का उपयोग किया जाता है, हालांकि अब छोटे फल वाले पौधों (बेरी) की प्रजातियां भी लोकप्रिय हो रही हैं। कर्तित पत्ती के सबसे महत्वपूर्ण गुणः पत्ती का रंग, तने की लंबाई, रोग एवं कीटों से रहित और अधिक फूलदान आयु हैं। भारत में सजावटी पत्तियों का व्यावसायिक उत्पादन होता है और बाजार में इसकी भारी मांग है। इनका उत्पादन पूरे वर्ष कम निवेश और कम देखभाल मे किया जा सकता है। उष्णकटिबंधीय जलवायु में उगने वाले सजावटी पत्तों वाले पौधे, उनकी आकर्षक संरचना, रंगरूप और आकार तथा उपयुक्तता के कारण पुष्प उद्योग में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसके साथ ही साथ विभिन्न झाड़ियों और पेड़ों के पत्ते भी आकर्षक होते हैं जो फूलों के साथ सजावट के लिए उपयुक्त होते हैं। वे अंदरूनी सजावट (इनटिरियर डिज़ाइनिंग) में उपयोग किए जाते हैं, जैसे घर, कार्यालय, होटल, शॉपिंग मॉल, रेस्तरां आदि।

कर्तित पत्तियों का उत्पादन

कर्तित फूलों की तुलना में कर्तित पत्तियों का उपयोग निम्नलिखित तरीके से लाभप्रद होता हैंः

- कर्तित फूलों की तुलना में इनका उत्पादन और मांग पूरे वर्ष रहती है यद्यपि फूलों कि मांग तो विशिष्ट समय या मौसम के आधार पर होती है।
- इनके उत्पादन हेतु निवेश लागत कम होती है।
- इनकी कटाई एवं भंडारण के लिए कोई निर्धारित समय सीमा नहीं होती ।
- परिवहन के दौरान इनकी गुणवत्ता को नुकसान होने का जोखिम कम होता है ।
- फूलों की अपेक्षा इनकी घटक आयु अधिक होती है।

उपभोक्ता की पसंद कर्तित पत्तियों के निम्नलिखित चरित्रों पर निर्भर करती हैः

- पत्तियों का ताजा दिखाई देना।
- अच्छी तना लंबाई होना।
- लंबी रखरखाव क्षमता।
- आकर्षक रंग, आकार, बनावट, तना लंबाई।
- कीड़ों और रोगों से मुक्त।
- बाहरी क्षति से मुक्त।
- परिवहन और संभालने की स्थितियों का सामना करने की क्षमता और अच्छी प्रस्तुति।

व्यावसायिक खेती के लिए अंतिम पसंद इस पर आधारित होती है कि यह एक लाभकारी निवेश होना चाहिए। साथ ही साथ किसी विशिष्ट प्रजाति को किसी स्थानीय क्षेत्र में उगाने पर ऐसे पौधे उत्पन्न होंगे जिसमें अच्छा रंग, बनावट, तना लंबाई, प्रस्तुति और घटक आयु होगी और जो अधिक मांग के समय में भी उपलब्ध होंगे।

तालिका 1ः सजावटी कर्तित पौधों का बागवानी वर्गीकरण

समूह	उदाहरण
वृक्ष	थूजा, युकेलिप्टस (सफेदा)

झाड़ी	एकलीफा, कोर्डीलाइन, अरेलिया, ड्यूरेन्टा
बेल	एसपरेगस, मॉन्सटेरा, साइनडेपसस,
मौसमी पुष्प	कोलीयस, कोसमोस
घास	बीयर घास, पमपास घास, एमु घास, फाउण्टेन घास
जड़ी बूटी सम्बन्धी बारहमासी	गोल्डन रोड, एन्थुरियम,
पाम	क्रिसमस पाम, चाइनीज फेन पाम, एरीका पाम
फर्न	लेदर लीफ फर्न, शेरोन फर्न

प्रवर्धनः विभिन्न कर्तित पत्तियों का विस्तृत उत्पादन करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि इन पौधों की आवश्यकताएं भिन्न–भिन्न होती है। कर्तित पत्ती वाले पौधों को ज्यादातर ऊतक विधि के द्वारा प्रवर्धित किया जाता है क्योंकि इनका बीज से प्रवर्धन में अधिक समय लगता है तथा पौधे भी एकरूप नहीं मिलते। पत्तियों का चुनाव पत्ती की लम्बाई, चौडाई, दीर्घायु एंव कलिका के आकार, बनावट एंव रंग पर निर्भर करता है जो पत्तियों के ग्रीन हाउस संवर्धन को सुनिश्चित करता है। विभिन्न क्षेत्रों मे संवर्धन कम लागत वाली लेथहाउस, पालीहाउस या मौसम को नियंत्रित करने वाले ग्रीनहाउस में कर सकते है।

मृदाः उत्तम फसल उत्पादन हेतु बलुई मिट्टी अति उपयोगी होती है। कर्तित पत्ती फसलें मिट्टी की पी.एच से अत्यधिक प्रभावित होती हैं इसलिये अच्छी बढवार के लिए मृदा का पी.एच. मान 4.0–6.0 होना चाहिए। साथ ही साथ बलुई मिट्टी मे वर्षा ऋतु के दौरान अधिक जल निकासी के कारण जल रोगकारी कारक (पीथियम व फाइटोफ्थोरा) निष्क्रिय हो जाते हैं तथा पौधों को रोगमुक्त रखने मे सहायक होते हैं।

जलवायुः उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र कर्तित पत्तियों के उत्पादन के लिये उत्तम माने जाते है। इनके लिये अधिक गर्म एंव कम तापमान दोनो ही हानिकारक होते है। उच्च गुणवत्ता तथा अधिक उत्पादन हेतु दिन का तापमान 25–28 डिग्री सेल्सियस तथा रात का तापमान 18 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। कर्तित की वृद्धि के लिए तापमान एवं प्रकाश दोनों ही महत्वपूर्ण कारक है। कर्तित पत्तियाँ चमकीलें प्रकाश में अच्छी वृद्धि करते है तथा मध्यम आकार, अच्छी गुणवत्ता व बनावट की पत्तियों के लिये मध्यम प्रकाश उपयोगी होता है। कर्तित पत्तियों की फसल ज्यादातर 50 प्रतिशत छायादार स्थानों पर उगायी जाती है। अत्यधिक छाया की अपेक्षा आंशिक छाया पत्तियों को सुदृढ़ रखने में सहायक होती है। आपेक्षिक आर्द्रता वाष्पोत्सर्जन दर एवं जल उपयोग को प्रभावित करती है। आपेक्षिक आर्द्रता कम होने पर जल की उपलब्धता के लिये तथा जल की क्षति को रोकने के लिये सिंचाई की आवश्यकता होती है। व्यवसायिक किसान साधारणतयाः हरितगृह में 50 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता नियंत्रित करते है। कर्तित पत्तियों को सिचाई की निरन्तर आवश्यकता होती है, लेकिन सिचाई अन्तराल के बीच मे मृदा के सूखने की आवश्यकता भी होती है।

रोपाई एंव सिचाईः खुले खेत मे मृदा के ढेलों के फोडकर उचित निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। पौधों की रोपाई सुबह या शाम के समय, जल निकास की व्यवस्था के अनुसार समतल या उंच उठी क्यारियों मे की जानी चाहिए। रोपाई के तुरंत बाद पौधों की सिंचाई कर दें। पौधों की वृद्धि के लिए बूदं–बूंद सिचाई का उपयोग बौछार सिचाई की तुलना में अधिक उपयोगी होता है। टपक सिचाई जल पद्धति से जल, उर्जा एंव पोषक तत्वों का संरक्षण किया जा सकता है जो कि पत्तियों की गुणवत्ता बढ़ाने मे सहायता करता है। टपक सिचाई खुले क्षेत्र के लिये सबसे अच्छी सिचाई है, क्योंकी वे खरपतवारों की वृद्धि को भी नियंत्रित करती है।

खाद एंव उर्वरकः धीमी गति से अवशोषित होने वाले उर्वरकों मे सबसे उत्तम पोषक तत्व होते है। मुख्य दीर्घ तत्वों मे नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम अति आवश्यक होते है। उर्वरक का उपयोग पौधों की उचित वृद्धि अवस्था मे करना चाहिए। उर्वरक का उपयोग सिचाई के बाद करना उपयुक्त माना जाता है जिससे की जड़ें जल्द ही उर्वरक को अवशोषित कर लेती हैं।

खरपतवार नियंत्रणः पौधों की उचित बढ़वार के लिए

खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है अन्यथा वे कीटों व बीमारियों के रोगाणुओं का आश्रय बन जाते है। खरपतवार नियंत्रण ज्यादातर खरपतवारनाशी का प्रयोग करके, पलवार (मल्चिंग) द्वारा एंव अन्तर नाली में निराई करके कर सकते है।

कीट एवं रोग प्रबंधनः अधिकांशतः कर्तित पत्तियाँ स्केल, माईट, लीफ माइनर, मीली बग कीटों द्वारा प्रभावित होती है। इन कीटों के नियंत्रण हेतु नीम का तेल, करंज का तेल या अन्य कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग कर सकते हैं। साधारणतयाः वे रोगाणु जो पर्ण धब्बा (लीफस्पाट), जड़ गलन (रूट रोट) तथा काला धब्बा (ब्लैकेनिंग) रोगों के कारक होते है उनके नियंत्रण का सबसे उत्तम उपाय रोकथाम है। इसके लिए भूमि मे उचित जल निकास करें तथा भारी वर्षा के बाद पानी इकट्ठा न होने दें। यदि पौधे मे रोग लग गया हो तो उस पौधे को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। जड़ सम्बन्धी रोगों के लिये मृदा को अच्छी प्रकार से जड़ कवकनाशी से उपचारित करना चाहिए ताकि रोग का उचित प्रबांधन हो सके।

कटाईः कटाई का सही समय एवं पौधे की उचित अवस्था, कर्तित पत्तियों के अधिक घटक आयु को सुनिश्चित करता है। पत्तियों की कटाई ठण्डे वातावरण मे सुबह या शाम को करनी चाहिए, जिससे पत्तियों मे नमी अथवा संरक्षित शर्करा (कार्बोहाइड्रेट) की मात्रा बढ जाती है। कटाई के उपरांत पतियों को डंडी सहित साफ ठंडे पानी की बाल्टी मे छायादार एवं हवादार स्थान पर रख देना चाहिए। वर्गीकरण के बाद क्षतिग्रस्त पत्तियों को हटा देना चाहिए तथा एकरूप तथा स्वस्थ पतियों को ठंडे स्थान पर रखना चाहिए।

प्रसंस्करणः प्रसंस्करण के अर्न्तगत प्रशीतन (प्री—कूलिंग,) अनुकूलन (कडिशनिंग), छंटाई, पैकेजिंग, भण्डारण एवं परिवहन आते है। यह सभी कारक कर्तित पत्तियों की घटक आयु को प्रभावित करते है। कटाई के पश्चात उत्पाद को ताजा रखने के लिये प्रशीतन (प्री—कूलिंग) को प्रयोग मे लाया जाता है। कटाई के समय पत्तियों का तापमान वायु के तापमान के बराबर होता है। इस तापमान पर श्वसन दर अत्यधिक होता है। जितनी जल्दी हो सके कटाई के बाद या परिरक्षक घोल से उपचारित करने के बाद प्रीकूलिंग करनी चाहिए। प्रीकूलिंग पत्तियों की सतह से तापमान को कम करके नमी की कमी को नियंत्रित करती है। कर्तित पत्तियो की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए प्रशीतन को अधिक आर्द्रता वाली परिस्थिति मे करना चाहिए। प्रीकूलिंग के लिए कर्तित पत्तियों को गत्ते के डिब्बों मे रखते है जिनमें किनारों पर उचित संख्या मे छिद्र होते है, जो तापमान को नियंत्रित करते है। तेज हवा द्वारा प्रीकूलिंग में केवल एक घण्टा जबकि गृह कूलिंग में 24 घण्टे या इससे अधिक का समय लगता है। पौध सामग्री के प्रबंधन से पहले अनुकूलन (कडीशनिंग) की आवश्यकता होती है इसलिए कर्तित पतियों को ठंडे पानी की बाल्टी मे रख देना चाहिए। पल्सिंग (स्पंदन) घोल 10—20 प्रतिशत शर्करा युक्त होता है जिसका उपयोग पैकिंग व परिवहन से पहले जीवन क्षमता को बढाने एवं उन्हे ताजा रखने लिये करते है। इन पत्तियों का परिवहन हिमित वाहनों मे 7—12 डिग्री सेल्सियस पर किया जाता है परंतु कुछ उष्णकटिबंधीय पत्तियां शीत क्षति से अत्यधिक प्रभावित होते है इसलिए इनका परिवहन 4.0 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान पर नहीं करना चाहिए।

भण्डारणः पत्तियों को प्लास्टिक की थैलियों मे या मोम लेपित कागज़ (बटर पेपर), गत्ते के डिब्बो में भंडारित किया जाता है। भण्डारण के समय संरक्षित पदार्थो का भी इस्तेमाल होता है । 17 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भण्डारण करना अच्छा होता है। कुछ हरी पत्तियां जैसे वाक्सीवीड, लेदर लीफर्फन, केमेलिया, इनकेलिप्टास, आइवी, स्काच ब्रूम एंव पाडोकारपस को पुष्प संरक्षित पदार्थ द्वारा लाभ होता है। परिरक्षक साधारणतः कार्बोहाइड्रेट युक्त होते है जो शर्करा (सुक्रोज) के रूप मे होते है इसके साथ—साथ जीवाणुनाशी, कवकनाशी तत्व युक्त होते है। इस घोल का उपयोग कटाई एवं पैकिंग के दौरान, फूल की दुकान पर, उपभोक्ता के गुलदस्तों मे, या निर्यात के समय स्टेम ट्यूब मे रख सकते हैं। पत्तियों की घटक आयु बढ़ाने के लिये निम्न उपायों का उपयोग करना चाहिए जो की जींवाणु को तने मे जाने से रोकते है।

1. इन्हे आयरन एवं क्लोराइड रहित जल मे रखना चाहिए जो इन्हे क्षति पहुचांता है।

2. हार्मोन्स एंव वृद्धि वर्धको का उपयोग जैसे बी०ए० (10–20 पी०पी०एम०) की दर से करना चाहिए।
3. अम्लीय कारक का उपयोग जैसे 20 पी०पी०एम० सीट्रीक एसिड या 10–20 पी०पी०एम० एल्मूनियम सल्फेट करना चाहिए।

पैकेजिंग: उत्पादो की सुरक्षा एवं प्रस्तुतीकरण के लिए पैकेजिग की जाती है। पत्तियों के गुच्छों को क्षति से बचाने के लिये ढीला–ढाला बाधनां चाहिए। इन्हे गीले अखबार, या साफ प्लास्टिक की थैलियों में लपेटते है। इन पत्तियों को कभी–कभी बर्फ में या धारीदार गत्ते के डिब्बे मे पैक किया जाता है। गीले अखबार व मोमयुक्त पेपर/कागज अधिक आर्दता उपलब्ध कराने के लिये उपयोगी होते है। रूई के गीले फाहों को पत्ती के किनारे लगाकर पैक करने से जीवन क्षमता बढ जाती है।

पत्तियों व भराव को ज्यादा समय आकर्षक दिखाने के नुस्खे

- यदि तना कठोर हो तो उसे न तोडे, बल्कि तने को तेज धारीदार चाकू या कैंची से तिरछा काटें।
- फूलदान को साफ रखें एंव ताजे पानी का उपयोग करें।
- सूर्य के सीधे तेज़ प्रकाश एवं ताप से पौधों को दूर रखें।

पत्तियों को भण्डारण एवं पारिवहण के समय में फलों एवं सब्जियों से दूर रखना चाहिए।

कृषि में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ: महत्व, मूल्यांकन और चुनौतियाँ

संजय सिंह राठौड़, सुभाष बाबू, विपिन कुमार, अनन्या गैरोला, दीक्षा शर्मा एवं रूपम भारती
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

पारिस्थितिकी सेवाएँ अथवा एकोसिस्टम सर्विसेस वे महत्वपूर्ण लाभ हैं, जो मनुष्य प्रकृति से प्राप्त करता है और जो पृथ्वी पर उसके जीवन को बनाए रखने में सहायक होती हैं। ये सेवाएँ पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बनाए रखने और सभी जीवों, विशेष रूप से मनुष्यों के अस्तित्व को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कृषि के संदर्भ में, पारिस्थितिकी सेवाओं का विशेष महत्व है, क्योंकि ये कृषि उत्पादकता, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण के समग्र स्वास्थ्य में सीधे योगदान करती हैं। कृषि पारिस्थितिकी तंत्र मुख्य रूप से प्राकृतिक क्रियाओं और पारिस्थितिकी सेवाओं पर निर्भर रहते हैं।

आधुनिक कृषि में अव्यवस्थित एवं अनुचित कृषि विधियों व तकनीकों के दुष्प्रभाव से पर्यावरण को दीर्घकालिक नुकसान पहुँच रहा है जो पृथ्वी के अस्तित्व पर प्रश्नचिंह खड़ा करता है। इनमें वन्यजीव आवासों का नुकसान, पोषक तत्वों के अत्यधिक उपयोग के कारण जल प्रदूषण, मिट्टी का कटाव, हरित गृह गैसों का उत्सर्जन और कीटनाशकों के उपयोग से मनुष्यों और जानवरों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव शामिल हैं। इन समस्याओं के समाधान और प्रकृति के लाभों के सतत उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए सतत कृषि प्रथाओं को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। सतत कृषि न केवल पर्यावरण के लिए लाभदायक है, बल्कि यह दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बनाए रखने में भी सहायक होती है।

महत्व

पारिस्थितिकी सेवाएँ कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये प्राकृतिक संसाधन और लाभ प्रदान करती हैं, जो खेती और खाद्य उत्पादन को समर्थन देती हैं। सम्पूर्ण विश्व में इन सेवाओं का वार्षिक मूल्य लगभग 125 से 140 ट्रिलियन डॉलर आँका गया है, जो यह दर्शाता है कि

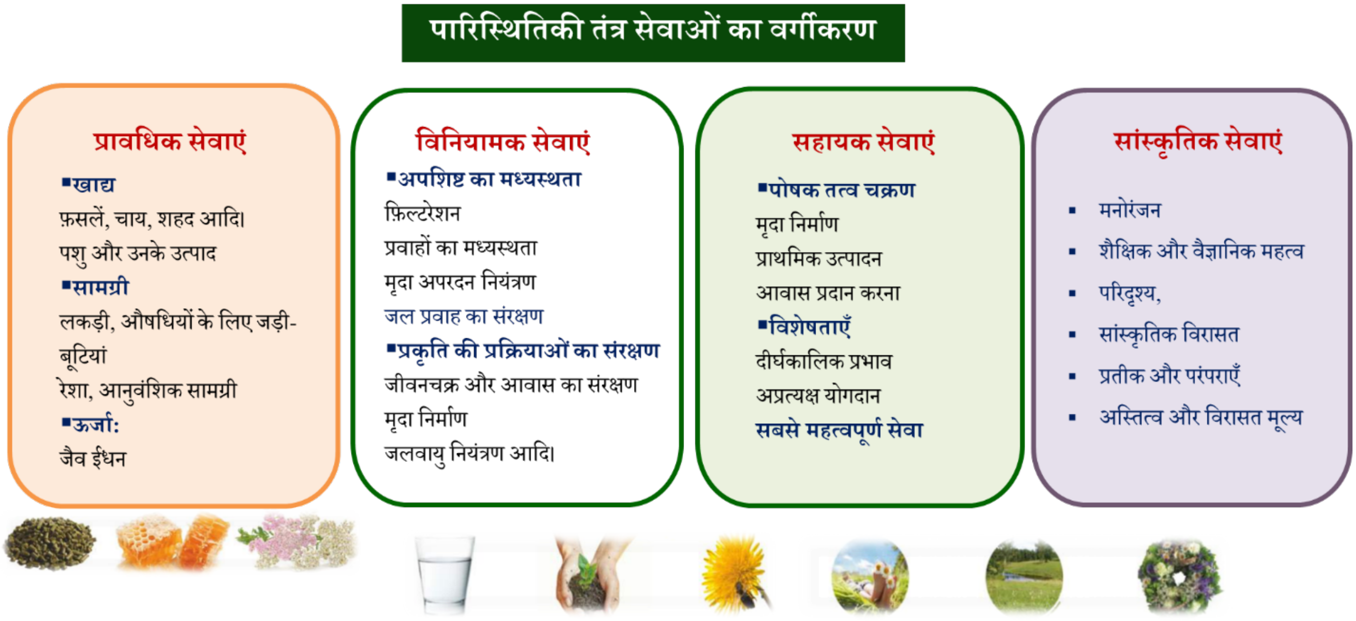
पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का वर्गीकरण
प्रावधिक सेवाएं
▪खाद्य
फ़सलें, चाय, शहद आदि।
पशु और उनके उत्पाद
▪सामग्री
लकड़ी, औषधियों के लिए जड़ी-बूटियां
रेशा, आनुवंशिक सामग्री
▪ऊर्जा:
जैव ईंधन
विनियामक सेवाएं
▪अपशिष्ट का मध्यस्थता
फ़िल्टरेशन
प्रवाहों का मध्यस्थता
मृदा अपरदन नियंत्रण
जल प्रवाह का संरक्षण
▪प्रकृति की प्रक्रियाओं का संरक्षण
जीवनचक्र और आवास का संरक्षण
मृदा निर्माण
जलवायु नियंत्रण आदि।
सहायक सेवाएं
▪पोषक तत्व चक्रण
मृदा निर्माण
प्राथमिक उत्पादन
आवास प्रदान करना
▪विशेषताएँ
दीर्घकालिक प्रभाव
अप्रत्यक्ष योगदान
सबसे महत्वपूर्ण सेवा
सांस्कृतिक सेवाएं
▪ मनोरंजन
▪ शैक्षिक और वैज्ञानिक महत्व
▪ परिदृश्य,
▪ सांस्कृतिक विरासत
▪ प्रतीक और परंपराएँ
▪ अस्तित्व और विरासत मूल्य

चित्र 1: पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का वर्गीकरण

ये न केवल मानव कल्याण, बल्कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए भी अपरिहार्य हैं। हालांकि, मानवीय गतिविधियों जैसे प्रदूषण, वनों की कटाई, अत्यधिक मछली पकड़ने और जलवायु परिवर्तन के कारण लगभग 60% पारिस्थितिकी सेवाएँ क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। यह क्षति न केवल खेती को प्रभावित कर रही है, बल्कि पृथ्वी पर जीवन के भविष्य को भी गंभीर खतरे में डाल रही है। 2050 तक विश्व की जनसंख्या के 9.7 अरब तक पहुँचने की संभावना है। इस तेजी से बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए, पारिस्थितिकी सेवाओं की रक्षा करना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है, ताकि पर्याप्त भोजन, स्वच्छ पानी और स्वस्थ जलवायु सुनिश्चित की जा सके। कृषि मुख्य रूप से परागण, स्वस्थ मिट्टी और जल आपूर्ति जैसी प्रक्रियाओं के लिए प्रकृति पर निर्भर रहती है। लेकिन यदि खेती टिकाऊ तरीकों से नहीं की जाती, तो यह पर्यावरण को गंभीर नुकसान पहुँचा सकती है

खेती और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए हमें पारिस्थितिकी सेवाओं को समझने और प्रबंधित करने के बेहतर तरीकों की आवश्यकता है। प्रकृति की रक्षा और पुनर्स्थापना के माध्यम से हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि यह खेती का समर्थन करती रहे और आने वाली पीढ़ियों के लिए संसाधनों की निरंतर उपलब्धता बनी रहे। इससे ऐसा संतुलन स्थापित होगा, जिसमें मानव और पृथ्वी दोनों समृद्धि और प्रगति के साथ आगे बढ़ सकें।

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन

कृषि पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, क्योंकि यह कृषि उत्पादों के बाजार मूल्य से परे पारिस्थितिकी तंत्र की वास्तविक उपयोगिता और महत्व को उजागर करता है। सही मूल्यांकन से न केवल इन सेवाओं के लाभों को समझा जा सकता है, बल्कि यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग हो।

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन क्यों आवश्यक है?

1. **सूचित निर्णय लेने के लिए–** पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन बेहतर और सूचित निर्णय लेने में सहायक होता है। यह सुनिश्चित करता है कि पर्यावरणीय प्रभावों को सही ढंग से समझा जाए और कृषि गतिविधियाँ अधिक प्रभावी एवं स्थायी बनें।
2. **पारिस्थितिकी तंत्र आधारित समाधानों का समर्थन करना–** यह स्पष्ट करता है कि पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ न केवल प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करती हैं, बल्कि कृषि प्रणालियों को भी सहायक बनाती हैं। इससे दीर्घकालिक लाभ प्रदान करने वाले पारिस्थितिकी तंत्र आधारित समाधानों को बढ़ावा मिलता है।
3. **छिपे हुए लाभों को उजागर करना–** मूल्यांकन उन छिपे हुए लाभों को सामने लाता है जिन्हें अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है, जैसे मिट्टी का पोषण, जल शुद्धीकरण और परागण। ये लाभ कृषि उत्पादन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।
4. **वैश्विक चुनौतियों का समाधान करना–** कृषि पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन वैश्विक समस्याओं, जैसे जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि और जल संकट, से निपटने में सहायक है। यह सुनिश्चित करता है कि कृषि नीतियाँ पर्यावरणीय स्थिरता को ध्यान में रखते हुए बनाई जाएँ।
5. **संरक्षण को बढ़ावा देना–** पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन संरक्षण की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। इससे लोग और सरकारें प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए सक्रिय कदम उठाती हैं, ताकि भविष्य की पीढ़ियों के लिए इन सेवाओं का लाभ सुरक्षित रहे।
6. **निवेश और फंडिंग आकर्षित करना–** सही मूल्यांकन से पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ निवेशकों और दानदाताओं के लिए आकर्षक बनती हैं। जब इन सेवाओं के दीर्घकालिक आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ प्रदर्शित किए जाते हैं, तो कृषि क्षेत्र में निवेश की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।
7. **दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा देना–** यह सुनिश्चित करता है कि कृषि प्रणालियाँ तात्कालिक लाभ के बजाय दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता पर आधारित हों। इससे संसाधनों का कुशल प्रबंधन होता है और कृषि को भविष्य में लाभकारी बनाया जा सकता है।

8. **बाजार तंत्र को सुधारना–** मूल्यांकन से बाजार तंत्र में सुधार लाने में मदद मिलती है। जब पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं को मान्यता दी जाती है, तो कृषि प्रणालियाँ अधिक स्थिर, जिम्मेदार और टिकाऊ बनती हैं, जिससे बाजार तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के मूल्यांकन की विधियाँ

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन उनके महत्व, लाभ, और उपयोगिता को समझने के लिए आवश्यक है। इस प्रक्रिया के लिए कई विधियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख विधियाँ और उनके लाभ–हानि का विवरण निम्नलिखित हैः

1. सहभागिता विधियाँ

इस विधि में हितधारकों को सक्रिय रूप से मूल्यांकन प्रक्रिया में शामिल किया जाता है। इसका उद्देश्य सेवाओं के लाभों की पहचान और उनकी प्रासंगिकता को समझना है।

- **विशेषज्ञ ज्ञान**

  यह तब उपयोगी होता है जब डेटा उपलब्ध नहीं होता और विशेषज्ञों की राय पर मूल्यांकन आधारित होता है। इस विधि से त्वरित परिणाम प्राप्त होते हैं एवं यह आंकड़ों की अनुपस्थिति में उपयोगी सिद्ध होती है, परन्तु विशेषज्ञों की धारणाओं और अनुभवों पर आधारित होने से कुछ परिणाम पक्षपाती भी हो सकते हैं।

- **प्रश्नावली जांच**

  यह विधि एक व्यापक समूह, जैसे आम जनता, के विचारों को शामिल करती है। साक्षात्कार और सोशल मीडिया सर्वेक्षण जैसे उपकरणों का उपयोग किया जाता है। इससे विविध दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं एवं यह सार्वजनिक भागीदारी को प्रोत्साहित करती है। इस विधि में परिणाम व्यक्तिपरक हो सकते हैं क्योंकि यह प्रतिभागियों की धारणाओं पर निर्भर करता है।

2. नमूना पर्यवेक्षण विधि

इस विधि का उपयोग विशिष्ट पारिस्थितिकी सेवाओं, जैसे परागण और कीट नियंत्रण, के मूल्यांकन में किया जाता है। परागण मूल्यांकन के सन्दर्भ में, एक निर्धारित समय सीमा में नमूना क्षेत्र में परागणकर्ताओं (जैसे मधुमक्खियों) के दौरे की संख्या को रिकॉर्ड किया जाता है। इसके आधार पर परागण सेवा का सटीक मूल्यांकन किया जाता है। वहीं कीट नियंत्रण मूल्यांकन में नमूना क्षेत्र में प्राकृतिक शत्रुओं (जैसे लेडीबग्स) की संख्या और विविधता का अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक शत्रुओं की उपस्थिति बेहतर कीट नियंत्रण को दर्शाती है। यह विधि विश्वसनीय और सटीक आंकडे प्रदान करती है तथा सेवाओं की विस्तृत और विशिष्ट समझ प्रदान करती है। इस विधि से समय और लागत अधिक लगती है। नमूना पर्यवेक्षण दीर्घकालिक निगरानी के लिए कठिन है।

3. अनुभवात्मक मॉडल/ब्लैक बॉक्स विधि

यह विधि रिग्रेशन मॉडल और अनुभवात्मक सूत्रों का उपयोग करके सेवाओं का मूल्यांकन करती है। यह सरल, सुविधाजनक और प्रभावी होती है। यह सही मानकों का उपयोग करके व्यापक रूप से लागू की जा सकती है। इसमे अंशांकन की कमी सटीकता को प्रभावित कर सकती है एवं परिणाम सही मानकों के चयन पर निर्भर करता है।

4. मूल्य आकलन विधि

इस विधि में मौद्रिक इकाइयों का उपयोग करके सेवाओं के मूल्य का आकलन किया जाता है। इसमे समानांतर कारक विधि, उत्पाद मूल्य विधि तथा एनर्जी विश्लेषण की विधियाँ शामिल है। उत्पाद मूल्य विधि सेवाओं का बाज़ार–आधारित व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ और ठोस व व्यावसायिक मूल्यांकन प्रस्तुत करती है, किन्तु यह सेवाओं के उन पहलुओं को नहीं पकड़ सकती जो बाज़ार में सीधे बेचे नहीं जाते हैं। एनर्जी विवेचन को सन्निहित ऊर्जा विश्लेषण भी कहा जाता है। यह एक प्रणाली आधारित विधि है जो इनपुट और आउटपुट को सामान्य इकाई (जैसे सौर ऊर्जा) में बदलकर सेवाओं का मूल्यांकन करती है। यह पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह को दर्शाती है।

5. पारिस्थितिकी सेवाओं के लिए भुगतान

यह विधि उन व्यक्तियों या समूहों (जैसे किसान) को भुगतान करने पर आधारित है, जो प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के माध्यम से समाज में सकारात्मक योगदान देते

हैं। यह लाभार्थी को भुगतान सिद्धांत पर आधारित है। इससे पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण होता है तथा जोखिम में कमी और आय में वृद्धि होती है।

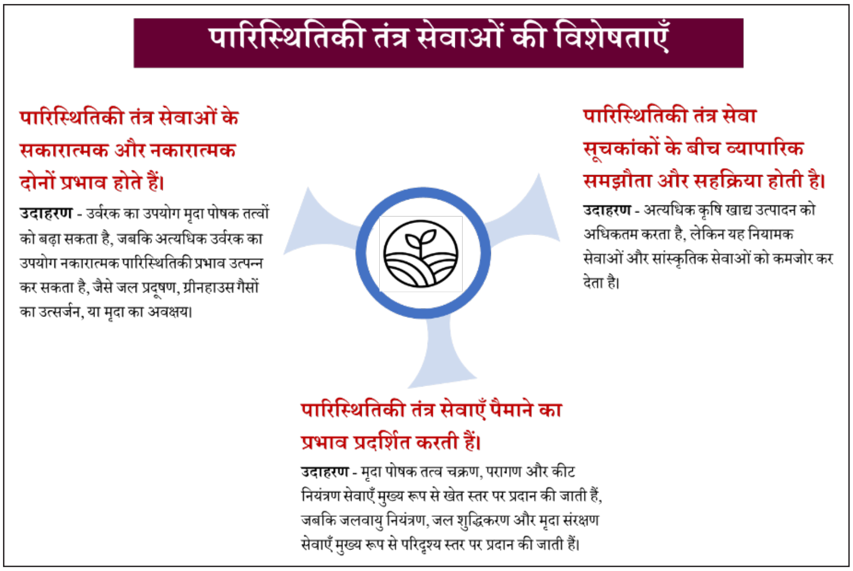

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की विशेषताएँ

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव होते हैं।

उदाहरण - उर्वरक का उपयोग मृदा पोषक तत्वों को बढ़ा सकता है, जबकि अत्यधिक उर्वरक का उपयोग नकारात्मक पारिस्थितिकी प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जैसे जल प्रदूषण, ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, या मृदा का अवक्षय।

पारिस्थितिकी तंत्र सेवा सूचकांकों के बीच व्यापारिक समझौता और सहक्रिया होती है।

उदाहरण - अत्यधिक कृषि खाद्य उत्पादन को अधिकतम करता है, लेकिन यह नियामक सेवाओं और सांस्कृतिक सेवाओं को कमजोर कर देता है।

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ पैमाने का प्रभाव प्रदर्शित करती हैं।

उदाहरण - मृदा पोषक तत्व चक्रण, परागण और कीट नियंत्रण सेवाएँ मुख्य रूप से खेत स्तर पर प्रदान की जाती हैं, जबकि जलवायु नियंत्रण, जल शुद्धिकरण और मृदा संरक्षण सेवाएँ मुख्य रूप से परिदृश्य स्तर पर प्रदान की जाती हैं।

चित्र 2: पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की विशेषताएँ

चुनौतियाँ

पारिस्थितिकी तंत्र की प्रक्रियाएँ अक्सर जटिल, गैर–रैखिक और अप्रत्याशित होती हैं, जिससे उनका मूल्यांकन और मापन एक कठिन कार्य बन जाता है। मूल्यांकन के लिए उपयोग किए जाने वाले मापदंडों में असंगतता भी इस प्रक्रिया को और जटिल बनाती है। पारिस्थितिकी सेवाओं के बीच संतुलन स्थापित करना और उनके बीच उत्पन्न टकराव को प्रबंधित करना एक बड़ी चुनौती है, विशेष रूप से तब जब मानकीकृत ढाँचों का अभाव हो। स्थान और समय के आधार पर भी मूल्यांकन में कई प्रकार की चुनौतियाँ होती हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती अनिश्चितताएँ और पारिस्थितिकी तंत्र की संवेदनशीलताएँ इस प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। मूल्यांकन की वर्तमान विधियाँ इन समस्याओं का समाधान करने में पूरी तरह सक्षम नहीं हैं।

साथ ही, हितधारकों की सीमित भागीदारी और सहयोग की कमी व्यावहारिक और नवाचारी समाधानों को धीमा कर देती है। सतत विकास और आर्थिक प्रगति के बीच संतुलन बनाना भी एक प्रमुख चुनौती है। इसके अतिरिक्त, डेटा की अनुपलब्धता और मुख्य पारिस्थितिकी सेवाओं के मूल्यांकन के लिए पर्याप्त और प्रभावी विधियों का अभाव इस समस्या को और बढ़ाता है। इस प्रकार, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के प्रभावी मूल्यांकन और प्रबंधन के लिए समग्र दृष्टिकोण, मानकीकृत ढाँचा, और विभिन्न हितधारकों के बीच अधिक सहयोग की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये न केवल खाद्य उत्पादन और कृषि उत्पादकता को बढ़ावा देती हैं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और स्थिरता बनाए रखने में भी सहायक होती हैं। कृषि और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के बीच यह परस्पर निर्भरता सुनिश्चित करती है कि मानव समाज की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए। हालाँकि, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन और प्रबंधन कई चुनौतियों से घिरा है। इनमें जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की क्षति, मानकीकृत ढाँचे की कमी, और हितधारकों की सीमित भागीदारी जैसी समस्याएँ शामिल हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सतत कृषि प्रथाओं को अपनाना, समग्र दृष्टिकोण विकसित करना, और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के महत्व को सही ढंग से पहचानना आवश्यक है।

सही मूल्यांकन, डेटा–संचालित दृष्टिकोण, और विभिन्न हितधारकों के बीच सहयोग से हम न केवल पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की रक्षा कर सकते हैं, बल्कि उन्हें भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी संरक्षित कर सकते हैं। यह कृषि और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखते हुए दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा और वैश्विक स्थिरता सुनिश्चित करने का मार्ग प्रशस्त करेगा।

* * *

कृषि वानिकी: प्राकृतिक संतुलन और स्थायित्व की दिशा में एक कदम

कपिला शेखावत, संजय सिंह राठौड़, विपिन कुमार, अनन्या गैरोला, दीक्षा शर्मा एवं रूपम भारती
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

पृथ्वी पर उपलब्ध प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्रों का आधे से अधिक भाग वस्तुओं और सेवाओं की बढ़ती मांग के कारण व्यापक रूप से परिवर्तित हो चुका है। इस बदलाव ने मानव कल्याण और पर्यावरण के बीच परस्पर संबंध को गहराई से प्रभावित किया है, जहाँ स्थानीय परिस्थितियों, सामाजिक गतिविधियों और अप्रत्याशित जलवायु परिवर्तनों ने इन तंत्रों की जटिलता को और अधिक बढ़ा दिया है। वैश्विक परिदृश्य में खाद्य उत्पादन की बढ़ती मांग ने न केवल मिट्टी और जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डाला है, बल्कि कृषि तंत्र को भी अनेक चुनौतियों के हवाले कर दिया है। हरित क्रांति के माध्यम से भारत ने खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता तो प्राप्त की, लेकिन इसके दुष्प्रभावों ने मिट्टी की उर्वरता में गिरावट, जलभराव, भूजल प्रदूषण, कीट प्रकोप और खेती की लागत में भारी वृद्धि जैसी समस्याएँ सामने लायीं हैं। इन सबके साथ जलवायु परिवर्तन ने इन कठिनाइयों को और अधिक जटिल एवं गंभीर बना दिया है, जिससे कृषि की स्थिरता को वैश्विक स्तर पर खतरा महसूस हो रहा है। इन गहरी और जटिल चुनौतियों के बीच, कृषि वानिकी एक स्थायी समाधान के रूप में उभरकर सामने आई है। यह प्रणाली न केवल खाद्य उत्पादन और ग्रामीण आजीविका में सुधार करती है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने और प्राकृतिक संसाधनों के कुशल उपयोग में भी सहायक सिद्ध होती है। पेड़ों, फसलों और पशुधन के एकीकृत प्रबंधन के माध्यम से कृषि वानिकी एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है, जो पर्यावरण और मानव कल्याण दोनों को सशक्त बनाती है।

कृषि वानिकी क्या है ?

कृषि वानिकी दो शब्दों 'कृषि' और 'वानिकी' के मेल से बना है। इसका अर्थ है भूमि उपयोग की वह प्रणाली जिसमें योजनाबद्ध तरीके से फसलों के साथ साथ वृक्षों की भी खेती की जाती है। इसमें काष्ठ वृक्ष, झाड़ीदार पौधों, बांस, खाद्यान्न फसलों, चारा उत्पादन, पशुपालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, और लाह उत्पादन जैसे विविध गतिविधियों को शामिल किया जाता है। इस प्रणाली में उगाए जाने वाले वृक्ष बहुउद्देशीय लाभ प्रदान करते हैं। कृषि वानिकी के तहत उपस्कर लकड़ी, जलावन, कोयला, चारा, फल, और अन्य उत्पाद प्राप्त होते हैं। साथ ही, यह कृषकों की आय में वृद्धि, भूमि संरक्षण, मिट्टी की उर्वरता में सुधार, घेराबंदी, वायु अवरोधक सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण, और जलवायु सुधार में सहायक होती है। कृषि वानिकी फसलों और पशुधन के साथ पेड़ों का एकीकरण करती है, ताकि खारे या जलभराव वाले क्षेत्रों जैसे बंजर भूमि को पुर्नस्थापित किया जा सके और कृषि उत्पादकता में सुधार किया जा सके। यह औषधीय पौधों, पशुधन और फलदार वृक्षों जैसे उच्च–मूल्य वाले घटकों के साथ वृक्षों की खेती को जोड़ती है, जिससे पारिस्थितिक और आर्थिक लाभ दोनों में वृद्धि होती है।

आधुनिक कृषि की पर्यावरणीय क्षति और असमानता जैसी चुनौतियाँ स्थायी प्रथाओं की आवश्यकता को उजागर करती हैं। कृषि वानिकी एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती

है, जो पारंपरिक खेती को नवीन तकनीकों के साथ मिलाकर कार्य करती है। यह न केवल ईंधन लकड़ी, चारा, फल और औषधीय पौधों जैसे बहुमूल्य संसाधन प्रदान करती है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता में सुधार, जैव विविधता का संरक्षण, और स्थानीय जलवायु नियंत्रण में भी सहायक होती है। कृषि वानिकी प्रणालियाँ मिट्टी की संरचना को सुधारने, मृदा–कार्बन भंडारण बढ़ाने, और पोषक चक्र को सुदृढ़ करने का कार्य करती हैं। ये वायु अवरोधक बनकर धूल को फँसाती हैं और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करती हैं। साथ ही, जैव विविधता को बढ़ावा देकर पारिस्थितिकी तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने में योगदान देती हैं। इस समग्र दृष्टिकोण के माध्यम से कृषि वानिकी वर्तमान कृषि और पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान प्रदान करती है, जो टिकाऊ भूमि प्रबंधन और बेहतर आजीविका की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

भारत में कृषि वानिकी का विकास

भारत में कृषि वानिकी का महत्व 1980 के दशक से गंभीरता से महसूस किया जाने लगा। इस दिशा में **भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद** ने संयुक्त रूप से अनुसंधान कार्य प्रारंभ किया। लोगों में इसके प्रति जागरूकता फैलाने एवं जन प्रोत्साहन हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने **"अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना"** की शुरुआत की और अनुसंधान को संस्थागत रूप देने के लिए **राष्ट्रीय कृषि वानिकी अनुसंधान केंद्र** की स्थापना झांसी (उत्तर प्रदेश) में की गई।

राष्ट्रीय नीतियों ने कृषि वानिकी को महत्वपूर्ण समर्थन दिया है। **राष्ट्रीय वन नीति 1952 और 1988, राष्ट्रीय कृषि नीति 2000, हरित भारत टास्क फोर्स 2001, राष्ट्रीय बांस मिशन 2002,** और **राष्ट्रीय कृषक नीति 2007** ने कृषि वानिकी के विकास में असाधारण भूमिका निभाई। इस दिशा में एक ऐतिहासिक कदम 2014 में बढाया गया जब भारत सरकार ने रोजगार, उत्पादकता, और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए **'राष्ट्रीय कृषि–वानिकी नीति'** लागू की। इस नीति को लागू करने वाला भारत विश्व का पहला देश बना। वैश्विक स्तर पर, कृषि वानिकी 1.02 बिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में फैली हुई है, जिसमें भारत 28.4 मिलियन हेक्टेयर का योगदान करता है। यहाँ कृषि वानिकी प्रणालियाँ गंगा–सिन्धु मैदानों में 5 लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में फैली हुई हैं, जहाँ पॉपलर, यूकेलिप्टस और बांस जैसी विभिन्न पेड़ प्रजातियाँ पाई जाती जाती हैं। इसने एक स्थायी भूमि उपयोग रणनीति के रूप में मान्यता प्राप्त है, जो गरीबी, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के द्वारा सतत विकास लक्ष्यों में योगदान करता है।

कृषि वानिकी में ध्यान योग्य रखने वाली बातें:

इसके अंतर्गत उगाए जाने वाले वृक्षों के चयन में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- वृक्ष स्थानीय जलवायु और परिस्थितियों के अनुकूल होने चाहिए (तालिका 1)।
- तीव्र वृद्धि वाले वृक्षों का चयन किया जाए ताकि उनका आर्थिक जीवनकाल शीघ्र पूरा हो।
- वृक्षारोपण इस प्रकार किया जाए कि फसलों तक प्रकाश सुगमता से पहुंच सके।
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले पौधों को प्राथमिकता दी जाए।

तालिका 1. कृषि वानिकी के लिए प्रमुख उपयोगी वृक्ष प्रजातियां

उपयोग का प्रकार	प्रमुख वृक्ष प्रजातियां
ईंधन व चारा के लिए	करंज, जट्रोफा, बबूल, सिरिस, अगस्त, अमलतास, कचनार इत्यादि
इमारती लकड़ी के लिए	शीशम, सागवान, सखुआ, गम्हार, महोगनी, कटहल, आम, बाँस इत्यादि
जल–मग्न भूमि के लिए	अर्जुन, जामुन, सफेदा इत्यादि
रेगिस्तानी–रेतीली भूमि के लिए	बबूल, नीम, खैर इत्यादि
बंजर भूमि के लिए	महुआ, बेर, जंगल जलेबी इत्यादि

फलदार वृक्ष	आम, अमरुद, लीची, आंवला, बेर, शरीफा, तूत, बेल इत्यादि
औषधीय पौधे	नीम, तुलसी, अमलतास, आंवला, बेल, अशोक, अर्जुन, करंज, हरड़–बहेड़ा इत्यादि

नोटः इन वृक्षों का उपयोग माचिस निर्माण, पत्तल उद्योग (सखुआ, पलाश आदि) और अन्य कई उद्योगों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भी किया जाता है।

एक अनुमान के अनुसार, कृषि वानिकी देश की कुल आवश्यकताओं का एक बड़ा हिस्सा पूरा करती हैः

- ईंधन लकड़ी (Fuelwood) का लगभग 50%
- लघु इमारती लकड़ी का 66%
- उपस्कर की मांग का 70–80%
- कागज उद्योग के लिए कच्चे माल का 60%
- हरा चारा (Green Fodder) का 10%

कृषि वानिकी की पद्धतियाँ

कृषि वानिकी की विभिन्न पद्धतियाँ क्षेत्रीय आवश्यकताओं, उपलब्ध संसाधनों और जलवायु के अनुसार विकसित की गई हैं। इन पद्धतियों को अपनाकर कृषक अपनी आय और भूमि की उर्वरता को बढ़ा सकते हैं।

1. फसल और वृक्ष संयोजन

यह पद्धति कृषि वानिकी की सबसे सामान्य और प्रभावी विधि है, जिसमें फसलों के साथ वन वृक्षों को खेतों में उगाया जाता है। वृक्षों को खेत की मेढ़ों पर या कतारों में उगाकर प्राकृतिक अवरोध के रूप में उपयोग किया जा सकता है। जैसे– शीशम और अरहर, नीम और मक्का, बबूल और राई इत्यादि। इससे न केवल कृषि उत्पादकता बढ़ती है, बल्कि राष्ट्रीय वन नीति द्वारा निर्धारित 33% वनाच्छादन का लक्ष्य भी पूरा किया जा सकता है।

2. वन चारागाह प्रणाली

इस पद्धति में वृक्षों के मध्य चारा घास उगाई जाती है, जिससे पशुपालन को बढ़ावा मिलता है। कई बार वृक्ष भी चारे के रूप में उपयोगी होते हैं। उदाहरण के तौर पर नेपियर घास के साथ शीशम, स्थानीय घास के साथ बबूल। इस विधि से मवेशियों के लिए चारे की पूर्ति के साथ–साथ भूमि संरक्षण भी होता है।

3. फलदार वृक्ष और वानिकी संयोजन

इस पद्धति में फलदार वृक्षों के साथ वानिकी वृक्ष और खाद्यान्न फसलें उगाई जाती हैं। फसलों और वृक्षों का चयन इस प्रकार किया जाता है कि वे एक–दूसरे के लिए प्रतिस्पर्धी न बनें। उदाहरणतः आम और शीशम के साथ गेहूं, अमरूद और बबूल के साथ मूंगफली आदि। इससे न केवल मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है, बल्कि किसान बहुउद्देशीय लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

4. उद्यान पद्धति

इस पद्धति में वन–पौधों के साथ छोटे फलदार वृक्ष लगाए जाते हैं। यह विधि विशेष रूप से सीमांत किसानों के लिए लाभकारी है।

उदाहरणः नींबू, केला, और पपीता के साथ शीशम, स्ट्रॉबेरी और अनानास के साथ बबूल। इस विधि से प्रारंभिक चरण में फलों से आय प्राप्त होती है, और दीर्घकाल में वन वृक्षों से भी लाभ मिलता है।

5. वनवर्द्धन जल पद्धति (जल–वानिकी)

इसे तालाबों के आसपास वन–पौधे लगाकर किया जाता है। इन पौधों के पत्ते और फल तालाब में गिरकर मछलियों और अन्य जलीय जीवों के लिए भोजन का स्रोत बनते हैं जैसे– तालाब के चारों ओर बबूल या शीशम। यह कृषि वानिकी और मत्स्य पालन का एक उत्कृष्ट संयोजन है।

6. बांस रोपण

बांस की खेती कृषकों के लिए अत्यंत लाभदायक है, क्योंकि यह तेजी से बढ़ता है और इसका उपयोग कागज उद्योग में बड़े पैमाने पर होता है। विशेषकर हाल ही में भारत सरकार ने बांस को वृक्ष के वर्ग से हटाकर घास में वर्गीकृत किया है, जिससे अब इसे काटने के लिए वन विभाग से अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

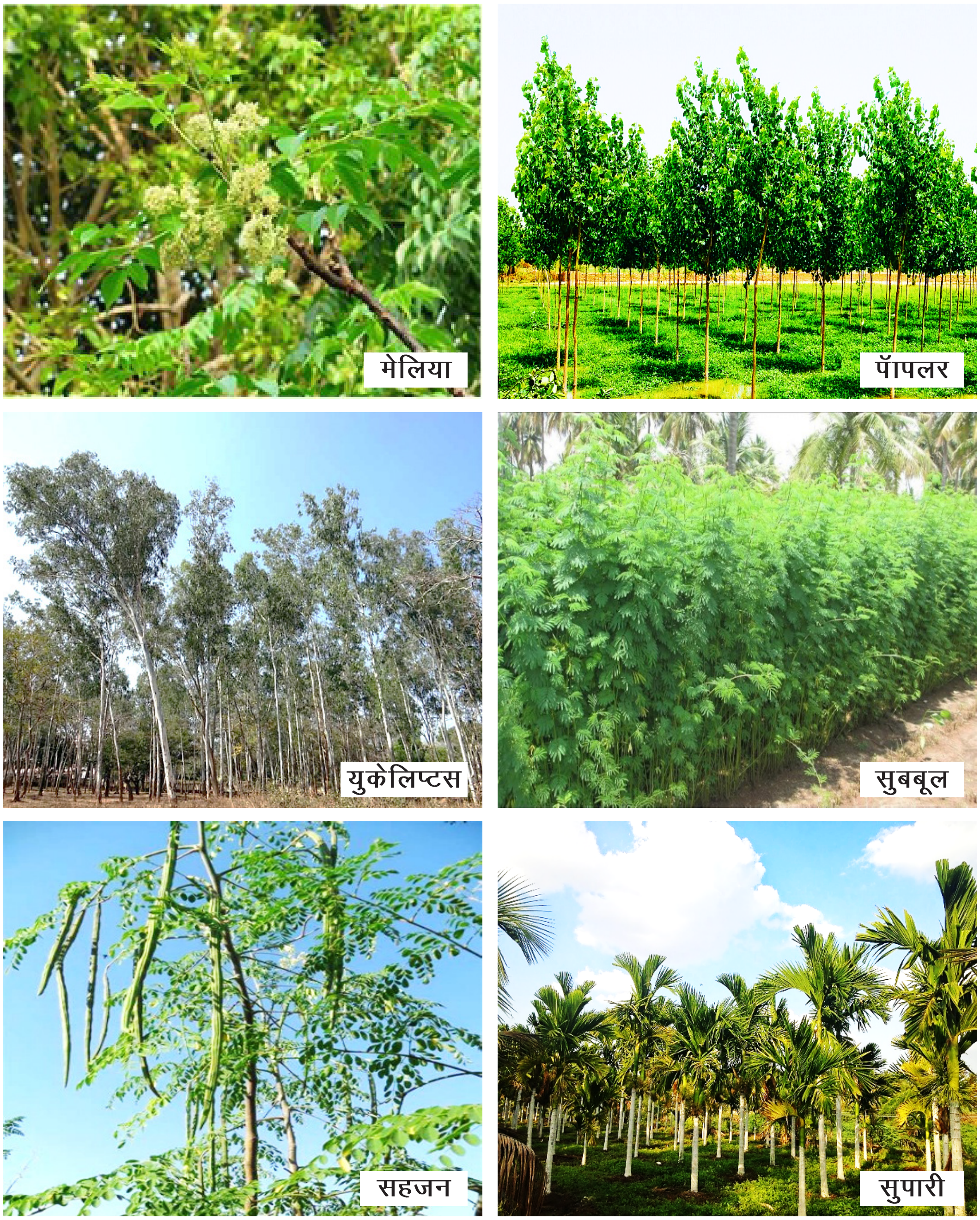

चित्रः कृषि वानिकी में उपयोग होने वाले पेड़–पौधे

7. लघु–वनोत्पाद उत्पादन

रेशम कीट पालन, मधुमक्खी पालन, और लाह उत्पादन जैसे लघु वनोत्पाद कृषकों की आय बढ़ाने में सहायक हैं। जैसेः शहतूत के वृक्ष पर रेशम कीट पालन, महुआ, गोंद, और करंज जैसे वृक्ष लाह और अन्य उत्पादों के लिए उपयोगी हैं। जनजातीय क्षेत्रों में यह पद्धति विशेष रूप से लोकप्रिय है।

8. परती और बंजर भूमि का उपयोग

कृषि वानिकी परती और बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने में मदद करती है। यहां कम जल की आवश्यकता वाले वृक्षों को उगाकर मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। उदाहरणतः जैट्रोफा और करंज, बबूल और नीम। इससे जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है और जल संचयन क्षमता में सुधार होता है।

यह सभी पद्धतियां किसानों को उनकी आय में वृद्धि, पर्यावरण संरक्षण, और भूमि उर्वरता में सुधार के माध्यम से लाभ प्रदान करती हैं। कृषि वानिकी का सही ढंग से उपयोग करके सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

कृषि वानिकी का पारिस्थितिकी तंत्र में महत्व

कृषि वानिकी ग्रामीण उत्पादन प्रणालियों को बढ़ावा देती है, जिसमें पेड़ों को फसलों और जानवरों के साथ मिलाकर उपयोग किया जाता है। पेड़ उत्पाद (जैसे लकड़ी, ईंधन, चारा) और पर्यावरणीय लाभ (जैसे मिट्टी की सुरक्षा और कार्बन संचित करना) प्रदान करते हैं। कृषि वानिकी प्रणालियाँ स्थानीय जैव विविधता को भी बढ़ावा देती हैं, भूमि उपयोग को स्थिर करती हैं, और सामाजिक–आर्थिक लाभ प्रदान करती हैं, जैसे जीवनस्तर में सुधार और आय की स्थिरता। किसान पारंपरिक ज्ञान के आधार पर लंबे समय से अपने परिदृश्यों में पेड़ों को शामिल करते आ रहे हैं, जो स्थिरता में योगदान करते हैं। ये प्रणालियाँ मिट्टी की उर्वरता का समर्थन करती हैं, कटाव को कम करती हैं और पोषक तत्वों को पुनः चक्रित करती हैं, जिससे कृषि वानिकी पारिस्थितिकीय और आर्थिक दृष्टि से दोनों दृष्टियों से व्यवहारिक और लाभकारी बनती है।

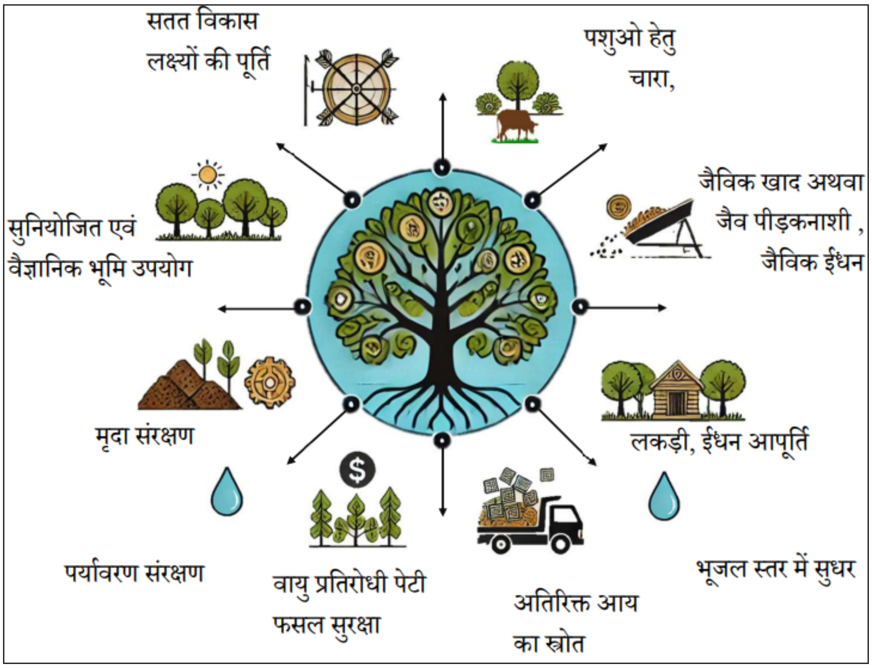
सतत विकास लक्ष्यों की पूर्ति
पशुओ हेतु चारा,
सुनियोजित एवं वैज्ञानिक भूमि उपयोग
जैविक खाद अथवा जैव पीड़कनाशी , जैविक ईंधन
मृदा संरक्षण
लकड़ी, ईंधन आपूर्ति
पर्यावरण संरक्षण
वायु प्रतिरोधी पेटी फसल सुरक्षा
अतिरिक्त आय का स्रोत
भूजल स्तर में सुधर

चित्र 2 –कृषि वानिकी के लाभ एवं योगदान

प्रमुख पारिस्थितिकीय योगदानः

1. पोषक तत्वों के चक्रण में सुधार द्वारा उर्वरकों की खपत में कमीः

कृषि वानिकी प्रणालियाँ एकल फसल प्रणालियों की तुलना में अधिक कुशल नाइट्रोजन चक्रण प्रदर्शित करती हैं। उदाहरण स्वरूप, वायुरोधक और अंर्तफसलीकरण प्रणालियाँ मिट्टी में नाइट्रोजन खनिजीकरण को बढ़ावा देती हैं। दलहनी फसलें एवं वृक्ष (प्रति वर्ष लगभग 50–100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में विशेष रूप से योगदान देते हैं, जिससे पोषक तत्वों की आपूर्ति और उत्पादन में वृद्धि होती है। गिरी हुई पत्तियाँ अपघटित होकर ह्यूमस का निर्माण करती हैं, जो मृदा की गुणवत्ता को समृद्ध बनाती हैं और पोषक तत्व प्रदान करती हैं। यह उर्वरकों की आवश्यकता को भी कम करती है। रासायनिक उर्वरकों की कम आवश्यकता के कारण कृषि वानिकी जैविक खेती के लिए एक पूरक प्रणाली के रूप में कार्य कर सकती है।

2. मिट्टी की सेहत और सूक्ष्मजीव गतिविधिः

कृषि वानिकी प्रणालियों में अंर्तफसल के रूप में लगाए गए पेड़ धूल को रोकते हैं, मिट्टी की सूक्ष्मजीव गतिविधि को सुधारते हैं और मिट्टी में निवास करने वाले जीवों, जैसे केंचुए और सूत्रकृमि, के लिए आवास प्रदान करते हैं। ये जीव पोषक तत्वों के चक्रण को बढ़ाते हैं और मिट्टी में कार्बन संग्रहण में योगदान करते हैं। वहीं मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए भारत का लक्ष्य वर्ष 2030 तक 26 मिलियन हेक्टेयर भूमि को क्षरण–तटस्थ बनाना है। यह प्रयास न केवल भूमि की गुणवत्ता में सुधार करेगा, बल्कि 17 सतत विकास लक्ष्यों में से 9 को पूरा करने में भी योगदान देगा, जिसमें पर्यावरण संरक्षण, खाद्य सुरक्षा, और सतत आर्थिक विकास शामिल हैं।

3. जैव विविधता का संवर्धनः

कृषि वानिकी योजनाबद्ध जैव विविधता को बढ़ावा देती है और सूक्ष्मजीव, पौधे, और जानवरों की संबंधित जैव विविधता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। स्थायी पेड़ संरचनाएँ सूक्ष्म वातावरण बनाती हैं, जो मिट्टी के गुण और सूक्ष्मजलवायु स्थितियों को नियंत्रित करती हैं।

4. वैश्विक पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँः

कृषि वानिकी कार्बन संचित करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में योगदान करती है। यह वैश्विक चुनौतियों, जैसे मिट्टी कटाव और जल की कमी, से निपटने में सहायक है।

- कृषि वानिकी प्रणालियाँ जैविक पदार्थ और मिट्टी के कार्बन स्तरों में महत्वपूर्ण वृद्धि करती हैं।
- विभिन्न अध्ययन दर्शाते हैं कि कृषि वानिकी प्रणालियाँ एकल फसल प्रणालियों की तुलना में जैविक कार्बन में 20–46% तक वृद्धि करती हैं।
- गहरे जड़ वाले पौधे और बहुवर्षीय पेड़ मिट्टी की गहरी परतों से पोषक तत्व निकालते हैं, जो फसलों की पहुँच से दूर होते हैं, और पत्तियों के अपघटन और छंटाई के माध्यम से शीर्ष मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाते हैं।
- कृषि वानिकी जैव विविधता का समर्थन करती है, जो पशु–जीवों को आकर्षित करती है, जो मिट्टी को मल–मूत्र से समृद्ध करते हैं।
- सूक्ष्मजीव, जैसे मायकोराइज़ल फफूंद, पोषक तत्वों के चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे नाइट्रोजन और फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है।

5. फसलों की उत्पादकता में वृद्धिः

कृषि वानिकी प्रणालियाँ फसलों की उपज को नाइट्रोजन स्थिरीकरण, कुशल पोषक तत्व चक्रण, और छांव व संरचनात्मक समर्थन प्रदान करके बढ़ाती हैं। उदाहरण के लिए, दलहनी पौधे प्रति हेक्टेयर 50–200 किग्रा तक नाइट्रोजन प्रदान कर सकते हैं, जिससे उत्पादकता में दोगुना या तीन गुना वृद्धि हो सकती है।

6. कार्बन सिंक के रूप में योगदानः

कृषि वानिकी प्रणालियाँ प्रभावी कार्बन सिंक के रूप में कार्य करती हैं, वनों की कटाई के प्रभाव को कम करती हैं और प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 1.5–3.5 मीट्रिक टन कार्बन को संचित करती हैं। रिवराइन बफर और शेल्टरबेल्ट जैसी प्रथाएँ कार्बन संरक्षण को बढ़ाती हैं। वर्ष 2030 तक अतिरिक्त वन और वृक्ष आवरण के माध्यम से 2.5 से 3 बिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य अतिरिक्त कार्बन सिंक का सृजन करने का लक्ष्य है, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। साथ ही, वर्ष 2070 तक शुद्ध–शून्य उत्सर्जन की प्राप्ति की परिकल्पना भारत को एक स्थायी और हरित भविष्य की ओर अग्रसर करती है।

कृषि–वानिकी के प्रति अब तक भारत का रुख

- **राष्ट्रीय कृषि–वानिकी नीति, 2014ः**

भारत वर्ष 2014 में रोजगार, उत्पादकता, और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए एक समर्पित राष्ट्रीय कृषि–वानिकी नीति अपनाने वाला विश्व का पहला देश बना।

- **कृषि–वानिकी पर उप–अभियान, 2016ः**

राष्ट्रीय कृषि–वानिकी नीति के तहत वर्ष 2016 में 'हर मेड़ पर पेड़' टैगलाइन के साथ लगभग 1,000 करोड़ रुपए के परिव्यय से 'कृषि–वानिकी पर उप–अभियान' की शुरुआत हुई। इस अभियान का उद्देश्य कृषि–वानिकी को एक समग्र राष्ट्रीय प्रयास का स्वरूप देना था।

- **वित्तीय प्रोत्साहनः**

भारत के वित्त मंत्री ने वर्ष 2022–23 के केंद्रीय बजट में घोषणा की कि कृषि वानिकी को सरकार द्वारा प्राथमिकता के तहत बढ़ावा दिया जाएगा।

- **कृषि–वानिकी पर उप–अभियान और राष्ट्रीय कृषि विकास योजना का विलयः**

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने SMAF का विलय राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के साथ कर दिया। इस विलय के कारण कृषि–वानिकी क्षेत्र अपनी प्रमुख कार्यान्वयन शाखा से वंचित हो गया।

भारत ने कृषि–वानिकी को नीति और योजनाओं के माध्यम से प्रोत्साहन देने की दिशा में अनेक सकारात्मक पहल की हैं। हालांकि, कृषि–वानिकी पर उप–अभियान जैसे विशिष्ट कार्यक्रमों का विलय चिंता का विषय है और इसके दूरगामी प्रभावों का आकलन आवश्यक है।

भारत में कृषि वानिकी की सीमाएँः

भारत में कृषि वानिकी निस्संदेह एक बेहतर विकल्प है, लेकिन इसके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं। सबसे पहली समस्या यह है कि भारत में अधिकांश किसान लघु और सीमांत श्रेणी के हैं, जिनकी जोत का आकार बहुत छोटा है। कृषि वानिकी के लिए अपेक्षाकृत बड़े क्षेत्र की आवश्यकता होती है, जो इन किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है। दूसरी समस्या जागरूकता की कमी से जुड़ी है। भारतीय किसान मुख्य रूप से पारंपरिक कृषि पद्धतियों को अपनाते रहे हैं और वे कृषि वानिकी के लाभों से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हैं। इस दिशा में जागरूकता फैलाने और किसानों को कृषि वानिकी के महत्व से अवगत कराने के लिए ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न चुनौतियाँः

यह संभावना प्रबल है कि जलवायु परिवर्तन वैश्विक स्तर पर कृषि के लिए नकारात्मक परिणाम उत्पन्न करेगा। बाढ़, सूखा, बेमौसम बारिश, ओलावृष्टि, ग्रीष्म और शीत लहरें जैसी घटनाएँ फसलों के लिए प्रतिकूल तापमान उत्पन्न करती हैं और कृषि पद्धतियों को नई जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं। यह न केवल जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक है, बल्कि कृषि उत्पादकता और किसानों की आय में वृद्धि करने का भी एक सशक्त माध्यम है।

कृषि वानिकी को बढ़ावा देने के लिए उपाय

- **संस्थागत सुदृढ़ीकरणः**

कृषि वानिकी को इसके उपयोगिता दृष्टिकोण से संस्थागत रूप से मज़बूत और स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। इसमें खेत–वानिकी, पर्यावरण संरक्षण, और सतत विकास जैसे पहलुओं को शामिल करना चाहिए।

- **वित्तीय सहायताः**

केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के किसानों तक सीमित न रखते हुए सभी छोटे भूमिधारकों को वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए। छोटे भूमिधारकों को कार्बन ट्रेडिंग के माध्यम से आय अर्जित करने के लिए प्रोटोकॉल विकसित करना चाहिए। कृषि वानिकी के लिए दीर्घकालिक वित्तपोषण चक्र, ब्याज स्थगन, और उपयुक्त बीमा उत्पादों को अभिकल्पित करना चाहिए। निजी क्षेत्र को कृषि वानिकी में वाणिज्यिक उद्यम और 'कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व' के माध्यम से निवेश के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

- **किसानों के लिए क्षमता निर्माणः**

वृक्ष आधारित खेती और मूल्य शृंखला के विस्तार के लिए किसान समूहों सहकारी समितियों, स्वयं सहायता समूहों, और किसान–उत्पादक संगठनों (FPOs) को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। कम से कम 10% कृषि भूमि को वृक्ष आच्छादित करने का लक्ष्य रखा जा सकता है।

- **कानूनी और नीतिगत सुधारः**

प्रतिकूल कानूनों में संशोधन और वानिकी व कृषि से जुड़े विनियमों को सरल बनाया जाना चाहिए। नीति–निर्माताओं को भूमि उपयोग और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित सभी नीतियों में कृषि वानिकी को सम्मिलित करना चाहिए। कृषि वानिकी अवसंरचना में सरकारी निवेश और स्थायी उद्यमों की स्थापना को बढ़ावा देना चाहिए।

- **वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी विकासः**

वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं को स्थान–विशिष्ट वृक्ष आधारित प्रौद्योगिकियों का विकास करना चाहिए, जो फसल और पशुधन प्रणालियों को पूरकता प्रदान करें।

इन उपायों को अपनाकर कृषि वानिकी को एक प्रभावी और टिकाऊ समाधान के रूप में विकसित किया जा सकता है, जो किसानों की आजीविका और पर्यावरण संरक्षण दोनों में योगदान देगा।

सीएस–60 सरसों: लवणीय और क्षारीय मिट्टी के लिए एक वरदान प्रजाति

पंकज नौटियाल[1], अंजलि साहू[1], योगेन्द्र प्रताप सिंह[2] एवं आर के सिंह[3]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, (भाकृअनुप–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान), हरदोई–II, उत्तर प्रदेश
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012
[3]कृषि विज्ञान केन्द्र, (भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान), लखीमपुर, खीरी–II, उत्तर प्रदेश

भारत में लवणीय और क्षारीय मिट्टी की समस्या गंभीर है, जो कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती पेश करती है। देश में लगभग 6.73 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणीय मिट्टी से प्रभावित है। इनमें से 80% क्षेत्र गुजरात, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, हरियाणा और पंजाब जैसे प्रमुख राज्यों में केंद्रित है। उत्तर प्रदेश में अकेले 1.37 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र लवणीय भूमि के अंतर्गत आता है। ये मिट्टी कृषि उत्पादकता को सीमित करती है और किसान की आय को प्रभावित करती है। सोडिक मिट्टी के पुनरुद्धार के लिए टिकाऊ कृषि समाधान अपनाने की आवश्यकता है। इस दिशा में, लवण–सहिष्णु फसल किस्मों का विकास और जैव–प्रणाली का उपयोग एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है। जैविक उत्पाद मिट्टी की संरचना और उर्वरता को पुनर्जीवित करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, किसान प्रशिक्षण, जल प्रबंधन तकनीकें, और नई किस्मों के उपयोग से लवणीय भूमि पर खेती की संभावनाओं को बढ़ाया जा सकता है।

भारतीय कृषि में सरसों का महत्व

भारतीय कृषि में सरसों (*Brassica juncea*) का विशेष स्थान है। यह देश की प्रमुख रबी तिलहन फसलों में से एक है, जो कुल तिलहन उत्पादन का 18% हिस्सा प्रदान करती है। सरसों का कुल खेती क्षेत्र लगभग 6.78 मिलियन हेक्टेयर है, जिससे प्रति वर्ष 9.12 मिलियन टन उत्पादन होता है। इसकी औसत उत्पादकता 1345 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। सरसों का तेल भारतीय रसोई में व्यापक रूप से उपयोग होता है, और इसके उप–उत्पाद जैसे खली और जैविक खाद पशु आहार और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

लवणीय मिट्टी में सरसों की खेती की चुनौतियाँ

लवणीय मिट्टी में सरसों की खेती कई चुनौतियों का सामना करती है। इनमें शामिल हैं:

- लवण–सहिष्णु किस्मों का सीमित उपयोग।
- अनुचित कृषि तकनीक और सिंचाई प्रबंधन।
- जैविक और अजैविक दबाव जैसे रोग और कीट।

सरसों की सीएस– 60, किस्म लवणीय और क्षारीय मिट्टी के लिए एक बेहतरीन विकल्प

भारत जैसे देश में, जहाँ कृषि एक प्रमुख जीवनयापन का साधन है, किसानों के लिए नई और उन्नत किस्मों की फसलें बेहद महत्वपूर्ण हैं। सरसों की सीएस–60, किस्म लवणीय और क्षारीय मिट्टी के लिए एक बेहतरीन विकल्प है। यह किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान (CSSRI), करनाल द्वारा विकसित की गई है। जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा लैंडमार्क किस्मों में शामिल किया गया है।

सीएस– 60, सरसों की प्रमुख विशेषताएँ:

सीएस–60, सरसों की विशेषताएँ इसे अन्य किस्मों से अलग और विशेष बनाती हैं। यह सरसों की किस्म अपनी पकने की अवधि में काफी प्रभावशाली है, क्योंकि यह केवल 125–132 दिनों में पूरी तरह से पककर तैयार हो जाती है। यह समय सीमा इसे किसानों के लिए एक बेहतर विकल्प बनाती है, क्योंकि यह समय पर कटाई और बाजार में आपूर्ति सुनिश्चित करती है।

इस किस्म में तेल की मात्रा लगभग 41 प्रतिशत होती है, जो इसे उच्च गुणवत्ता वाली सरसों की श्रेणी में रखती

है। तेल की इतनी अधिक मात्रा किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ देती है और इसे बाजार में एक लोकप्रिय उत्पाद बनाती है। सीएस– 60, सरसों की पैदावार भी उल्लेखनीय है। यह सामान्य मिट्टी में 25–29 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से उत्पादन करती है, जबकि लवणीय मिट्टी में भी इसकी पैदावार 19–22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। यह क्षमता इसे उन क्षेत्रों के लिए आदर्श बनाती है, जहाँ मिट्टी लवणीय या क्षारीय होती है और अन्य किस्में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पातीं। इस किस्म का एक और महत्वपूर्ण गुण इसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता है। यह अल्टरनेरिया ब्लाइट, सफेद रतुआ, पाउडरी फफूंदी, स्टैग हेड और स्क्लेरोटिनिया तना गलन जैसी घातक बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक है। इससे फसल को नुकसान का खतरा कम हो जाता है और किसान को उत्पादन में स्थिरता प्राप्त होती है।इसके पौधे की ऊँचाई 182–187 सेमी तक होती है, जो इसे एक संतुलित और मजबूत किस्म बनाती है। इसके अलावा, इसके बीज भी उच्च गुणवत्ता के होते हैं, जहाँ 1000 दानों का वजन 5.0–5.5 ग्राम तक होता है। यह बीज की गुणवत्ता किसानों को बीज दर और उत्पादन में लाभकारी बनाती है।इन सभी विशेषताओं के कारण, सीएस–60, सरसों किसानों के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प बन चुकी है। इसकी बेहतर उत्पादन क्षमता, उच्च तेल मात्रा, और रोग प्रतिरोधक गुण इसे लवणीय और क्षारीय मिट्टी वाले क्षेत्रों में खेती के लिए आदर्श बनाते हैं।

सीएस– 60, सरसों किसानों के लिए अनेक लाभ प्रदान करती है, जो इसे अन्य किस्मों से अधिक प्रभावी और उपयोगी बनाते हैं। सबसे पहले, यह किस्म अपने उच्च उत्पादन क्षमता के लिए जानी जाती है। सीएस–54, कांति और गिरीराज जैसी पारंपरिक किस्मों की तुलना में यह लगभग 25 प्रतिशत अधिक उत्पादन देती है। यह बढ़ी हुई उत्पादन दर किसानों को अधिक उपज और बेहतर आय प्राप्त करने में मदद करती है। इसके अलावा, इस किस्म में तेल की मात्रा भी अन्य किस्मों की तुलना में 27 प्रतिशत अधिक होती है। अधिक तेल उत्पादन का अर्थ है कि किसान अपने उत्पाद को बेहतर मूल्य पर बेच सकते हैं, जो उनकी आय में सीधा इजाफा करता है।आर्थिक दृष्टि से, यह किस्म लवणीय भूमि में खेती करने वाले किसानों के लिए वरदान साबित होती है। इसकी खेती से प्रति हेक्टेयर किसान 27,000 रुपये तक का आर्थिक लाभ कमा सकते हैं। यह उन किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है, जिनकी भूमि लवणीय है और सामान्य फसलें वहाँ उगाने में मुश्किल होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सीएस 60 सरसों उन क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, जहाँ सामान्य सरसों की किस्में अंकुरित नहीं हो पातीं। यह क्षारीय और लवणीय मिट्टी के उपयोग को बढ़ावा देती है, जो अब तक कृषि के लिए अनुपयोगी मानी जाती थी। इस किस्म की मदद से किसान इन भूमि का अधिकतम उपयोग कर सकते हैं और अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। इन लाभों के कारण, सीएस–60, सरसों किसानों के लिए एक नई आशा की किरण है, जो न केवल उनके उत्पादन और आय को बढ़ाती है, बल्कि लवणीय भूमि को भी कृषि के लिए उपयोगी बनाती है।

कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके), हरदोई–II, द्वारा क्लस्टर फ्रंटलाइन डेमोंस्ट्रेशन (CFLD-Oilseed) के अंतर्गत सीएस–60 का प्रदर्शनः

केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल के अंतर्गत कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके), हरदोई–II ने रबी 2020–21 से 2023–24 तक सरसों की सीएस–60, किस्म पर क्लस्टर फ्रंटलाइन डेमोंस्ट्रेशन (सीएफएलडी) का आयोजन किया। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य लवणीय और क्षारीय मिट्टी में सरसों की नई उन्नत किस्मों का प्रदर्शन, किसानों को उन्नत कृषि पद्धतियों की जानकारी देना और जैव–फॉर्मुलेशन (हैलो मिक्स) का उपयोग करके फसल उत्पादकता में वृद्धि करना था। इस पहल के तहत 43 गांवों के 72 हेक्टेयर क्षेत्र में 410 प्रदर्शन किए गए, जिसमें हरदोई जिले के भरावन, संडीला, बेहंदर, सुरसा, कौथावा और ब्लॉक शामिल थे।

इस परियोजना के तहत, सीएस–60, किस्म को चुना गया, जो 9.5 पीएच तक की मिट्टी में उगाई जा सकती है। इस किस्म के साथ जैव–फॉर्मुलेशन (हैलो मिक्स) का उपयोग किया गया, जो न केवल फसल की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है बल्कि मिट्टी के स्वास्थ्य को भी बनाए रखता है। परियोजना का सबसे बड़ा लाभ यह था कि तीन वर्षों के औसत के अनुसार, सीएस–60, सरसों का उत्पादन

पारंपरिक खेती विधियों की तुलना में 353.33 किलो प्रति हेक्टेयर अधिक रहा। इसके अलावा, औसतन प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ 68,575.67 रुपये पाया गया और लाभ–लागत अनुपात 2.79 रहा। सीएफएलडी के तहत आयोजित प्रशिक्षण और प्रचार–प्रसार गतिविधियाँ भी अत्यधिक प्रभावशाली रहीं। किसानों को प्रशिक्षण सत्र और फील्ड डेमोंस्ट्रेशन के माध्यम से नई तकनीकों की जानकारी दी गई। साथ ही, क्षेत्र भ्रमण और किसान मेलों का आयोजन किया गया, जिससे अन्य किसानों को भी इस तकनीक को अपनाने के लिए प्रेरित किया गया। इस परियोजना ने न केवल किसानों को तकनीकी ज्ञान प्रदान किया बल्कि उन्हें आर्थिक रूप से भी सशक्त बनाया। सीएस–60, सरसों और जैव–फॉर्मुलेशन तकनीक ने लवणीय और क्षारीय मिट्टी में सरसों की फसल उत्पादकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। केवीके, हरदोई–II द्वारा किए गए ये प्रयास न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं बल्कि उनके जीवन स्तर को सुधारने में भी मददगार साबित हुए हैं। इन गतिविधियों ने किसानों को यह विश्वास दिलाया कि लवणीय मिट्टी में भी सरसों की उन्नत खेती संभव है और इससे उनकी आजीविका बेहतर हो सकती है।

पर्यावरण संरक्षण एवं मृदा सुधार में दलहनी फसलों का योगदान

राकेश कुमार सिंह[1], विनय कुमार सिंह[2] एवं पंकज नौटियाल[3]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र–II, लखीमपुर–खीरी
[2]प्रधान वैज्ञानिक, भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[3]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र–II, हरदोई

दलहनी फसलों की जड़ों में ग्लोमेलिन प्रोटीन पायी जाती है, जो की गोंद की तरह मृदा कणों को स्थिरता प्रदान करती है। इससे मृदा संरचना में सुधार होता है तथा मृदा जल संचयन में वृद्धि एवं मृदा अपरदन में कमी आती है। दूसरे शब्दों में दलहन फसलों की जड़ों में गांठें पायी जाती हैं जिससे राइजोबियम नामक जीवाणु होते हैं, जो वातावरण की स्वतन्त्र नाइट्रोजन को उनके यौगिकों में बदलकर पौधों को प्रदान करती है। इसी दौरान ये यौगिक मिट्टी में भी मिल जाते हैं तथा मिट्टी के उपजाऊपन को बढ़ाते हैं।

इस प्रकार दलहनी फसलें पर्यावरण की रक्षा एवं मृदा सुधार में सहायक की भूमिका निभाती आ रही हैं।

दलहनी फसल एवं पर्यावरण

दलहनी फसलों का खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ पर्यावरण एवं मृदा के स्वास्थ्य सुधार में भी महत्वपूर्ण योगदान है। इन दिनों हमारी कृषि प्रणाली, अनेक समस्याओं जैसे–मृदा स्वास्थ्य, जल की कमी, वैश्विक तपन, जैव विविधता, नाइट्रोजन की कमी आदि से जूझ रही है। इनके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एवं गुणवत्ता में दिनों–दिन कमी आ रही है। इन सभी समस्याओं के समाधान में ये दलहनी फसलें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दलहन फसल उत्पादन, मृदा उर्वरता बनाये रखने की अपनी सहज क्षमता के कारण टिकाऊ खेती में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसलिए दलहन उत्पादन को बदलते परिवेश में मानव पोषण, पशुधन आहार, पर्यावरण तथा मृदा उर्वरता का टिकाऊ स्रोत माना जाता है।

विश्व में भारत का दलहन उत्पादन में उच्च स्थान

भारत विश्व का सर्वाधिक दलहन उत्पादन देश है फिर भी भारत को प्रतिवर्ष लगभग 15–17 लाख टन दलहन आयात करना पड़ता है। भारत विश्व में दलहन उत्पादन का सबसे बड़ा उत्पादन (वैश्विक उत्पादन का 25 प्रतिशत), उपभोक्ता (विश्व खपत का 27 प्रतिशत) तथा आयात (14 प्रतिशत) है। भारत में 35 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल में दालों की खेती के साथ, दुनिया का सबसे बड़ा दाल उत्पादक देश है। यह क्षेत्रफल और उत्पादन में क्रमशः 37 प्रतिशत और 29 प्रतिशत के साथ पहले स्थान पर है।

हमारे देश में सन् 1950–51 में प्रति व्यक्ति दालों की उपलब्धता 60–70 ग्राम थी जो 2008–09 में घटकर 34 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हो गयी थी। वर्तमान में प्रति व्यक्ति दालों की उपलब्धता 47 ग्राम प्रति व्यक्ति हो गयी है, जबकि आई.सी.एम.आर के मानक के अनुसार 51 ग्राम प्रति व्यक्ति होनी चाहिए।

लगभग 5,000 से भी अधिक वर्षों से मानव दलहनी फसलों की खेती कर रहा है। ये फसले दुनिया के अधिकांश क्षेत्रों में उगाई जाती है। विश्व में इनके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। ये अपेक्षाकृत कम लागत की खाद्य फसलें हैं। मूंग, उड़द, अरहर, चना,

लोबिया एवं मटर मुख्य रूप से उगाई जाने वाली दलहनी फसलें हैं। ये फसलें किसानों और उपभोक्ताओं में बेहद लोकप्रिय हैं। अधिकांष किसानों को इनके पर्यावरणीय एवं मृदा उर्वरा शक्ति के लाभ के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती है।

दलहन उत्पादन में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

अल्प प्रयुक्त दलहनी फसलों का मृदा पोषकता और वायुमंडल के साथ घनिष्ठ संबन्ध है। यह मनुष्य को केवल उदर पूर्ति के लिए अनाज ही उपलब्ध नहीं कराती बल्कि वर्तमान समय में मानव जीवन में एक अहम भूमिका भी निभाती है। ऐसी स्थिति में अल्प प्रयुक्त दलहनी फसलें हमारी प्रोटीन की कमी को पूरा कर सकती हैं।

इन अल्प प्रयुक्त दलहनी फसलों का एक विषिष्ट गुण वायुमंडल की स्वतंत्र नाइट्रोजन को मृदा में स्थिरीकरण करके भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करना है, जिससे मिट्टी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में सुधार होता है। ये अल्प प्रयुक्त दलहनी फसलों की वनस्पति होने के कारण मृदा को पूर्ण रूप से ढंक लेती है, जिससे वर्षा की बूंदों का सीधा प्रभाव नहीं पड़ने के कारण मिट्टी का कटाव कम होता है।

जलवायु परिवर्तन को वैश्विक तपन भी कहा जाता है, वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि विकास में बहुत बड़ी चुनौती बन गया है और भविष्य में खाद्य उत्पादन को मुख्य रूप से प्रभावित करेगा। वास्तव में पिछले दशक में जलवायु विषमतायें जैसे कि वर्षा के समय व स्थान में परिवर्तन, सूखा व बाढ़ इत्यादि घटनाओं की आवृति बढ़ रही है आधुनिक कृषि प्रणाली में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा के स्वास्थ्य में लगातार गिरावट आ रही है। इस बात को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने वर्ष 2015 से ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की शुरुआत की है। इसके तहत मृदा के पोषक तत्वों व गुणवत्ता की जांच की जाती है। इससे किसान पता लगा सकते हैं कि उनके खेत की मिट्टी में पोषक तत्व कितनी मात्रा में उपलब्ध हैं। इससे किसानों द्वारा उचित पोषक तत्व प्रबंधन करके अधिक उत्पादन प्राप्त करने के साथ–साथ मृदा उर्वरता एवं स्वास्थ्य को बरकरार रखा जा सकता है।

दलहनी फसलों का मृदा सुधार में योगदान

मृदा में नाइट्रोजन दलहनी फसलों की जड़ ग्रंथियों में राइजोबियम बैक्टीरिया पाये जाते हैं, जो इन फसलों की जड़ों में सहजीवी संबंध बनाकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थिरीकरण करते हैं। इससे मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है। इसलिए इन फसलों को कम नाइट्रोजन की आवस्यकता होती है। इन फसलों की कटाई के बाद इनके अवशेष मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बनाए रखने में सहायक होते हैं। ये अग्रिम फसल के उत्पादन में नाइट्रोजन उर्वरकों की मात्रा के प्रयोग को कम कर देते हैं। इन फसलों को हरी खाद के विकल्प के तौर पर उगाया जा सकता है।

सारणीः दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण

क्र. सं.	फसल	नाइट्रोजन स्थिरीकरण मात्रा (कि.ग्रा./हेक्टेयर)
1	चना	23–97
2	मूंग	50–66
3	मसूर	4–200
4	उड़द	119–140

दलहनी फसलों से मृदा के कार्बनिक पदार्थो में वृद्धि

मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। दलहनी फसलों के अवशेषों में कार्बन एवं नाइट्रोजन अनुपात कम होने के कारण ये सूक्ष्मजीवों द्वारा कम समय में आसानी से विघटित कर दिए जाते हैं। इसके कारण ये फसलें मृदा में नाइट्रोजन एवं कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाने में सहायक होती है।

जलवायु परिवर्तन और दलहन उत्पादन का सम्बन्ध

खाद्यान्न फसलों की तुलना में दलहनी फसलों में उर्वरकों का प्रयोग कम मात्रा में किया जाता है, जिससे लगभग 5–7 गुना कम हरितगृह गैसों का उत्सर्जन होता है।

नाइट्रोजन उर्वरक बनाने वाले कल–कारखानों से निकलने वाली कार्बनडाईऑक्साइड गैस वातावरण को दूषित करती है। इससे वैश्विक तापमान में वृद्धि होती है,

जबकि दलहनी फसलें प्रकाश संश्लेषण द्वारा वातावरण की कार्बनडाईऑक्साइड को ग्रहण करके वैश्विक तापमान के प्रभाव को सीमित करती हैं।

दलहनों में बहुत ही कम अवधि में परिपक्व होने वाली उन्नत किस्मों के उपलब्ध होने की वजह से मौसम परिवर्तन की स्थितियों में इन्हें आसानी से उगाया जा सकता है।

दलहनों में अन्य फसलों की तुलना में विपरीत वातावरण के प्रति अधिक अनुकूलता पाई जाती है। जब दलहनों का प्रयोग पशुओं के आहार में किया जाता है, तो उच्च प्रोटीन मात्रा की वजह से भोजन रूपान्तरण अनुपात बढ़ जाता है। इससे जुगाली करने वाले पशुओं से मीथेन गैस का उत्सर्जन कम होता है।

दलहन, मृदा में जाल परिसंचरण की दर में सुधार करता है। इससे कि जल धारण क्षमता बढ़ जाती है और सूखे से निपटने में सहायता मिलती है।

पोषक तत्वों का पुर्नचक्रण

फसल चक्र में उथले जड़तंत्र वाली फसले केवल मृदा की ऊपरी सतह से ही पोषक तत्वों को ग्रहण कर पाती हैं। अधिकांश पोषक तत्वों की मात्रा, पानी के साथ घुलकर मृदा की निचली सतह में चली जाती है। इस कारण ये फसलें इनका उपयोग नहीं कर पाती हैं। गहरा जड़ तंत्र होने के कारण दलहनी फसलें इनको आसानी से ग्रहण करके ऊपरी मृदा सतह में पोषक तत्वों का पुर्नचक्रण करती हैं।

मृदा स्वास्थ्य में सुधार

दलहनी फसलों की जड़ों में ग्लोमेलिन प्रोटीन पायी जाती है, जो कि गोंद की तरह मृदा कणों को स्थिरता प्रदान करती है। इससे मृदा संरचना में सुधार होता है तथा मृदा जल संचयन में वृद्धि एवं मृदा अपरदन में कमी होती है। मृदा पी—एच में सुधार जब दलहनी फसलों वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करती हैं।

दलहनी फसलों के प्रमुख कीट, रोग एवं नियंत्रण

उकठाः यह रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* नामक कवक से लगता है। इसके प्रभाव से पौधे की पत्तियों पीली पड़ जाती है। तने के ऊपर लम्बवत चिरान जैसी तम्बाकू के रंग की धारी दिखाई पड़ती है। जिससे पौधे की बढ़वार रूक जाती है। इसके उपाय के लिए 3 वर्ष तक दलहनी फसलों की खेती उस खेत में न करें। या बीज को बोने से पहले कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम अथवा ट्राइकोडर्मा 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुआई करनी चाहिए।

झुलसाः यह रोग भी फफूँद से लगता है। सुबह—सुबह खेत में देखने पर कहीं—कहीं टुकड़ों में पौधे पीले पड़ते नजर आते हैं। यह बीमारी बीज से फैलती है। इसके रोकथाम के लिए मैंकोजेब फफूंदनाशी दवा 25 ग्राम प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

चने की कटुआ सूँन्डीः यह कीट रबी मौसम की सभी दलहनी फसलों को हानि पहुँचाता हैं। यह पौधे के तने को भूमि के पास से रात्रि के समय काटता है। इसके नियंत्रण के लिए 100 मि.ली. साइपरमैथरिन 2.5 ई.सी. या 160 मि. ली. फेनवालरेट 2.0 ई.सी. को 200 ली. पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

फली छेदक सूँडीः फली छेदक हरे या पीले रंग की होती है यह फलियों में बन रहे बीज को खाकर नष्ट कर देती है। इसके नियंत्रण के लिए 400 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 100 मि.ली. साइपर मैथरिन 25 इ.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

लगातार अनाज वाली फसलों को उगाने से उनमें लगने वाले कीट एवं रोगों का प्रकोप अधिक होने लगता है। सामान्यतः अनाज वाली फसलों पर लगने वाले कीट एवं रोगों का प्रकोप दलहनी फसलों पर नहीं होता है। कीट एवं रोगों के रोगजनकों को जीवनचक्र पूरा करने के लिए उचित माध्यम नहीं मिल पाता है। इसलिए इन फसलों को फसलचक्र में शामिल करने से कीट व रोगों के निवारण में सहायता मिलती है।

दलहन फसलें प्रोटीन का मुख्य स्रोत

दलहनी फसलें अपने बीज, फलियों से बनती हैं। यह घास, अनाज और अन्य गैर फलियों वाली फसलों से

स्पष्ट रूप से भिन्न होती हैं। इनमें नाइट्रोजन पोषक तत्व की मांग अन्य फसलों की तुलना में कम होती है। इनकी जड़ों की गांठों में राइजोबियम जीवाणु पाये जाते हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। इससे मृदा की उर्वरता में वृद्धि होती है। दालों में 20 से 30 प्रतिशत प्रोटीन पाये जाने की वजह ये यह शाकाहारी लोगों के लिए प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत मानी जाती हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में आहारीय रेशा तथा आवश्यक अमीनो अम्ल (मेथियोनीन व लाइसिन) पाये जाने की वजह से ये अनाजों के साथ पोषण के रूप में परिपूरक होती हैं।

खरपतवार नियन्त्रण एवं प्रबन्धन

सभी दलहनी फसलों में यदि समय पर खरपतवार प्रबंधन न किया जाये तो पैदावार में 20–30 प्रतिशत तक की हानि हो जाती है। दलहनी फसलों में 1–2 निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। सभी फसलों में बुवाई के 25–30 दिन बाद दूसरी गुड़ाई करें। गुड़ाई करने के बाद जड़ों की पैदावार अच्छी होती है। जिससे दलहनी फसलों में खरपतवारों का नियंत्रण रासायनिक खरपतवार नाशकों का प्रयोग करके भी किया जा सकता है।

खेत को तैयार करके बुवाई से पहले 400 मिली० बासालिन (फ्लूक्लोरेलिन) 45 ई.सी. को 200 ली. पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़के तथा कल्टीवेटर या हैरो से मिट्टी में अच्छी तहर तुरन्त मिलाकर फिर बुवाई करें। यदि बासालिन को मिट्टी में अच्छी तरह नहीं मिलाया जाये तो धूप में उड़ जायेगा। पैंडीमेथलीन (स्टाम्प) 30 ई.सी. की एक ली० मात्रा को 200 ली0 पानी में मिलाकर बुवाई के 2 दिन के अंदर छिड़काव करने से भी खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण किया जा सकता है।

कुछ दलहनी फसलें जैसे मोठ, मूंग, एवं मूंगफली आवरण फसलों की श्रेणी में आती हैं। इन फसलों को अंतरसस्य प्रणाली में शामिल करने से खरपतवारों की वृद्धि एवं विकास के लिए उचित मात्रा में प्रकाश नहीं मिल पाता है। इसके फलस्वरूप खरपतवार प्रबंधन में मदद मिलती है।

सिंचाई प्रबन्धन

चना व मसूर की फसल में वर्षा के न होने पर बुवाई के 45–60 दिन बाद फूल आने से पहले पहली सिंचाई तथा दूसरी सिंचाई फलियाँ विकसित होने पर करनी चाहिए। ध्यान रहे चना व मसूर में फूल आने के समय सिंचाई न करें अन्यथा लाभ के बजाए हानि हो सकती है। ग्रीष्म कालीन मूँग व उड़द के फसल में बुवाई के 20–25 दिन बाद पहली सिंचाई तथा 10–15 दिन बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। पौधों में शाखाओं के निकलने तथा फली लगने पर अवश्य सिंचाई करें। अरहर की फसल में वर्षा के न होने पर 3–4 सप्ताह बाद पहली सिंचाई तथा फलियां बनते समय वर्षा के न होने पर दूसरी सिंचाई करनी चाहिए।

सामान्यतः दलहनी फसलों को कम पानी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ये फसलें अपनी पत्तियों से भूमि की ऊपरी सतह को ढक लेती हैं, जिससे भूमि की सतह से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।

दलहन और तिलहन के उत्पादन में भारत सरकार का योगदान

भारत में विभिन्न प्रकार की दालें दोनों सीजन में उगाई जाती हैं। दालों के कुल उत्पादन में रबी सीजन में उत्पादित दालों का योगदान 60 प्रतिशत से अधिक है। विगत दस वर्षों से, 2014–15 से 2023–24 के दौरान, दलहन और तिलहन के कुल उत्पादन में क्रमशः 43 प्रतिशत और 44 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। भारत सरकार दलहन और तिलहन की खेती को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन कार्यान्वित कर रही है। एनएफएसएम–दलहन के अंतर्गत, राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के माध्यम से किसानों को फसल उत्पादन और संरक्षण प्रौद्योगिकियों, फसल प्रणाली आधारित प्रदर्शनों, नई जारी किस्मों के प्रमाणित बीजों के उत्पादन और वितरण, समेकित पोषक तत्व और कीट प्रबंधन तकनीकों, उन्नत कृषि उपकरणों/औजारों/संसाधन संरक्षण मशीनरी, जल बचत उपकरणों, दलहन का उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए एनएफएसएम के अंतर्गत दलहन की नई किस्मों के बीज मिनीकिटों का वितरण, गुणवत्ताप्रद बीज का उत्पादन,

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) संस्थानों/राज्य कृषि विश्वविद्यालयों/कृषि विज्ञान केंद्रों में बीज हब का सृजन, कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा प्रौद्योगिकीय प्रदर्शन, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन, प्रक्षेत्र प्रदर्शन आदि के माध्यम से उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने में विशेष योगदान पूरे भारत में निरन्तर किया जा रहा है।

देश में दलहनों एवं तिलहनों की उत्पादकता में वृद्धि करने के उद्देश्य से, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) इन फसलों पर मूल एवं नीतिगत अनुसंधान तथा स्थान विशिष्ट उच्च पैदावार, किस्मों तथा समतुल्य उत्पादन पैकेजों के विकास के लिए राज्य कृषि विश्वविद्यालयों एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों को विशेष बजट भी प्रदान करती हैं।

* * *

मूली की खेती और बीज उत्पादनः उन्नत तकनीकी और उत्कृष्ट किस्में

अशोक जायसवाल, नरेश कुमार सिंह, विपिन कुमार, चन्दू सिंह एवं संजीव कुमार शर्मा
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

मूली *(Raphanus sativus L.)* एक महत्वपूर्ण ठंडी मौसम की फसल है, जो मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण देशों में उगाई जाती है। मूली यूरोप और एशिया से उत्पन्न हुई है, माना जाता है कि यह राफानस राफानिस्ट्रम से उत्पन्न हुई है, जो यूरोप में एक खरपतवार के रूप में व्यापक रूप से फैली हुई है। मूली की जड़ें विटामिन सी का एक अच्छा स्रोत मानी जाती हैं, जिनमें प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग में 15–40 मिलीग्राम विटामिन सी होता है। यह फसल विटामिन और खनिजों से भरपूर होती है, और मूली को इसके कोमल कंदमूलों के लिए उगाया जाता है, जिन्हें कच्चा सलाद के रूप में या पकी हुई सब्जी के रूप में खाया जाता है। इसका एक विशिष्ट तीखा स्वाद होता है। इसे उत्तर भारत में पराठों में भी डाला जाता है, जिन्हें नाश्ते में दही के साथ खाया जाता है। मूली का ठंडा प्रभाव होता है, यह कब्ज को रोकती है, भूख बढ़ाती है और जब पत्तियों के साथ पकाई जाती है तो यह अधिक पोषक होती है। पत्तियां भी सब्जी के रूप में पकाई जाती हैं। ताजे पत्तों का रस मूत्रवर्धक और मलद्वार की समस्या को हल करने में उपयोगी होता है। मूली विटामिन–सी और खनिजों का अच्छा स्रोत है। मूली की जड़ें कई स्वास्थ्य लाभों से जुड़ी होती हैं, जैसे यकृत, पित्ताशय और मूत्र संबंधी विकारों, बवासीर और जठराग्नि को ठीक करना। यह एक छोटी अवधि की अत्यधिक उत्पादक फसल है। मूली का तीखा स्वाद इसके आइसोथियोसाइनेट्स (4–मिथाइल थियो–3–ब्यूटेनिल आइसोथियोसाइनेट) की उपस्थिति के कारण होता है। मूली की जड़ों का रंग एंथोसाइनिन पिगमेंट के कारण गुलाबी, साइनेडीन पिगमेंट से बैंगनी और पेलागोननिडिन (रापानूसिन) पिगमेंट से लाल होता है। यह फसल पोषण और औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण किसानों के लिए लाभकारी है। मूली पूरे भारत में उगाई जाने वाली फसल है, लेकिन यह पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में मुख्य रूप से उगाई जाती है।

मूली की जातियों को बीजोत्पादन के दृष्टिकोण से एक वर्षीय और द्विवर्षीय समुदायों में बांटा गया है। एक वर्षीय जातियाँ मुख्य रूप से मैदानी क्षेत्रों में बीजोत्पादन के लिए उपयुक्त होती हैं, जबकि द्विवर्षीय जातियाँ के बीज समशीतोष्ण क्षेत्रों में ही उगाए जाते हैं।

जलवायु और मिट्टी

चयनित खेत की मिट्टी गहरी, हल्की और भूर–भुरी होनी चाहिए। खेत अच्छी तरह से सूखा होना चाहिए। यह फसल हल्की अम्लीय मिट्टी (पी.एच. 5.5–6.8) पर उग सकती है। मूली विभिन्न रूप से वनस्पति अवस्था में एक मध्यम ठंडी जलवायु में अच्छी तरह से उग सकती है। इसके बीज उत्पादन के लिए कम आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। बीज के उत्पादन के लिए गर्म शुष्क अवधि अधिक उपयुक्त नहीं होती है। 32 डिग्री सेंटीग्रेट या उससे अधिक का तापमान होने से पराग अंकुरित होने में विफल हो सकता है।

भूमि की तैयारी

भूमि को अच्छी तरह से जुताई और 25 सेंटीमीटर ऊंची क्यारियां और 30–45 सेंटीमीटर दूरी पर नालियां तैयार की जाती हैं। बीजों को क्यारियों में लगातार बोया जाता है। बीजों की दूरी किस्मों के प्रकार पर निर्भर करती है। भारतीय उष्णकटिबंधीय किस्मों को अधिक समय लगता है और ये बड़ी होती हैं। दो क्यारियों के बीच 45 सेंटीमीटर की दूरी रखी जाती है और बीजों को क्यारियों में बोया जाता है। बाद में इन्हें 6–8 सेंटीमीटर की दूरी पर पतला

किया जाता है। यूरोपीय प्रकार की मूली 25–30 दिनों में तैयार हो जाती है और इनकी बुआई 5–10 सेंटीमीटर × 3 सेंटीमीटर की दूरी पर की जाती है। गोल मूली की किस्मों के लिए, बीजों को मिट्टी की सतह पर बोया जाता है और उनके ऊपर मिट्टी की परत डाली जाती है। बड़ी किस्मों के बीज 1.5–3.0 सेंटीमीटर गहरे बोए जाते हैं। आमतौर पर बीजों को चरणबद्ध तरीके से बोया जाता है ताकि जड़ें निरंतर आपूर्ति में बनी रहें। मूली की जड़ों की वृद्धि लम्बाई में अधिक होती है, प्रायः जड़ें मिट्टी से बाहर निकल आती हैं, इसलिए इन पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है, अन्यथा इन पर पाले या हिमपात का दुष्प्रभाव पड़ सकता है।

बुवाई का समय एवं मात्रा

उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में मूली को पूरे साल उगाया जा सकता है। चूंकि समशीतोष्ण मूली ठंड सहन करती है, इसे सितंबर से जनवरी के बीच सफलतापूर्वक उगाया जाता है। उष्णकटिबंधीय प्रकारों की बुआई सितंबर के मध्य से शुरू की जाती है। यदि बुआई नवम्बर के बाद की जाती है, तो यह जल्दी फूल देती है। बीज दर बड़ी किस्मों के लिए 10.0 किलोग्राम से लेकर सशीतोष्ण यूरोपीय प्रकारों के लिए 12.0 किलोग्राम तक होती है। बीजोत्पादन के लिए एक वर्षीय समूह की विभिन्न जातियों की बुआई अगस्त या सितम्बर में करनी चाहिए। यदि बीजोत्पादन को यथास्थान रखा जाए, तो मूली की पछेती बुआई लाभकारी होती है, क्योंकि इस तरह से विकसित जड़ों का ऊपरी भाग आमतौर पर खुला रहता है, जिस पर हिमपात या पाला का असर हो सकता है। इस स्थिति में क्षतिग्रस्त जड़ों वाले पौधे मर सकते हैं, जिससे बीज की उपज में कमी आ सकती है। जापानी व्हाइट जाति के लिए बीजोत्पादन को यथास्थान रखने हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में अक्तूबर और मैदानी क्षेत्रों में नवम्बर में बुआई करनी चाहिए। बुआई के लिए प्रति हेक्टेयर 8–10 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है।

मूली की उत्कृष्ट प्रजातियाँ

मूली की किस्में आकार, माप, त्वचा के रंग और फसल की अवधि में भिन्न होती हैं। इन किस्मों को तीन समूहों में बांटा जा सकता हैः

- **यूरोपीय या सशीतोष्ण प्रकारः** सशीतोष्ण प्रकार छोटी होती हैं, जिनकी गुणवत्ता उत्कृष्ट होती है और इन्हें मुख्य रूप से सलाद के लिए उपयोग किया जाता है।
- **एशियाई या उष्णकटिबंधीय प्रकारः** सशीतोष्ण प्रकारों की तुलना में अधिक तीव्र स्वाद वाली होती हैं और इनकी जड़ें बड़ी होती हैं।
- **भारतीय प्रकारः** जौनपुरी जायंट, जो उत्तर प्रदेश के जौनपुर में उगाई जाती है, इसकी जड़ें 75–90 सेंटीमीटर लंबी, 50–60 सेंटीमीटर व्यास वाली और वजन 5–15 किलोग्राम तक होती हैं।

क्र.सं.	प्रजाति का नाम	उपयुक्त क्षेत्र	अवधि दिन	मुख्य विशेशताएं
01.	पूसा देसी	उत्तरी मैदानों में बोने के लिए उपयुक्त है।	50–60	इसकी जड़े 30–35 सेंटीमीटर लंबी, सफेद, अधिक तीखी होती हैं।
02.	पूसा चेतकी	यह उत्तर भारतीय मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त।	40–50	इस किस्म की जड़ें मध्यम आकार की, शुद्ध सफेद, पतली, हल्की तीखी और मुलायम होती हैं।
03.	जापानी सफेद	उत्तर भारत के मैदानी इलाकों और कुछ पहाड़ी क्षेत्र।	60–65	इसकी जड़ें 20–30 सेंटीमीटर लंबी, बेलनाकार, हल्की तीव्रता वाली और हरी कंधे वाली सफेद होती हैं।
04.	पूसा रेशमी	उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों	55–60	इसकी जड़ें हल्की तीव्रता वाली, 30–35 सेंटीमीटर लंबी, सफेद रंग की होती हैं जिनमें हरा कंधा होता है।
05.	पंजाब सफेद	उत्तर भारतीय क्षेत्र।	30–40	सफेद, पतली और नुकीली जड़ें, लंबाई 30–40 सेमी, स्वाद हल्का, और जड़ों में शाखा नहीं।

क्र.सं.	प्रजाति का नाम	उपयुक्त क्षेत्र	अवधि दिन	मुख्य विशेशताएं
06.	पंजाब पसंद	इसे पंजाब सहित उत्तर भारत के मैदानी और तराई क्षेत्र।	45–50	इसकी जड़ें सफेद रंग की, लंबी और आंशिक रूप से गोल होती है। बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर से नवंबर।
07.	पंजाब अगैती	पंजाब और उत्तर भारत के मैदानी एवं उपोष्ण क्षेत्र।	30–35	मध्यम लंबाई की जड़ें, ऊपर लाल छिलका और नीचे सफेद छिलका। इसका बुवाई का समय अप्रैल से अगस्त तक उपयुक्त रहता है ।
08.	कल्याणपुर नंबर–1	उत्तर प्रदेश और उत्तर भारत के अन्य मैदानी क्षेत्र।	40–45	इसकी जड़ें 22–23 सेमी लंबी, सफेद रंग की हरी कंधे वाली और नुकीली होती है।
09.	अर्का निशांत	दक्षिण भारत और अन्य सशीतोष्ण क्षेत्र।	40–45	इसकी जड़ें लंबी, संगमरमर जैसी सफेद और हल्की तीखी होती है। ये गूदेपन, समयपूर्व फूल निकलने, जड़ों की शाखा बनने और नुकीली जड़ों से बचाव में सक्षम होती है।
10.	सीओ.1	किस्म का अनुमोदित क्षेत्र मुख्य रूप से दक्षिण भारत है।	45	इसकी जड़ें दूधिया सफेद, बेलनाकार जिसकी लंबाई 23 सेमी होती है। इस किस्म की उपज 9–10 टन प्रति हेक्टेयर होती है ।
11.	व्हाइट आइसीकल	मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश, उत्तर भारत और अन्य समशीतोष्ण क्षेत्र हैं।	25–30	इस किस्म की जड़ें बेलनाकार, 12–15 सेमी लंबी 2–3 सेमी मोटी होती है तथा इनकी त्वचा पतली, मांस सफेद एवम हल्का से तीखा स्वाद होता है
12.	पूसा हिमानी	उत्तर भारत, विशेषकर दिल्ली और हिमाचल प्रदेश के ठंडी जलवायु वाले क्षेत्र।	55	इसकी जड़े 30–35 सेंटीमीटर लंबी, त्वचा शुद्ध सफेद और मांस कुरकुरा होता है।
13.	स्कारलेट ग्लोब	मुख्य रूप से उत्तर भारत और विषेश रूप से हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा है।	25–30	इस किस्म की जड़ें गोल, व्यास में 2 सेंमी, रंग में लाल और मांस कुरकुरा और शुद्ध सफेद होता है।
14.	पूसा मृदुला	मुख्य रूप से उत्तर भारत, विषेश रूप से हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब और हरियाणा है।	35–40	इस किस्म की जड़ें गोलाकार होती हैं, चमकदार लाल त्वचा के साथ, हल्की तीखापन, औसत उपज 130 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

बीजोत्पादन की विधियां

मूली के बीजोत्पादन के लिए जड़ों से बीज और बीज से बीज दोनों विधियों का उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, उत्कृष्ट बीज या मूल बीजोत्पादन के लिए जड़ों से बीज की विधि अधिक प्रभावी होती है। बीज से बीज विधि सरल है क्योंकि इसमें चुने गए खेत में ही बुआई की जाती है, जिससे जड़ें तैयार होने पर उन्हें निकालकर पुनः रोपाई का अतिरिक्त खर्च और श्रम बचता है। लेकिन, इस विधि में जातीय शुद्धता बनाए रखना चुनौतीपूर्ण होता है, क्योंकि अवांछित जड़ों को छांटना संभव नहीं होता। इसलिए यह विधि केवल उन्हीं मामलों में अपनानी चाहिए जहां उच्च गुणवत्ता वाले मूल बीज या प्रजनक बीज बोए गए हों। जड़ों से बीजोत्पादन की विधि में, नवम्बर माह में मूली की जड़ों को निकालकर छांटा जाता है। फिर, जातीय

शुद्धता के अनुसार छांटी गई जड़ों को पहले से तैयार किए गए खेत में पुनः रोपाई किया जाता है। रोपाई से पहले मूली की लंबी जड़ों वाली जातियों की आधी जड़ें और लंबी पत्तियां काट दी जाती हैं। केवल कटी हुई पत्तियों वाले हिस्से की रोपाई करनी चाहिए। छोटी या गोल जड़ों वाली जातियाँ (जैसे रैपिड रेड व्हाइट टिपड या श्स्कारलेट ग्लोब) की जड़ों का केवल पतली मूल जड़ का भाग काटा जाता है। हालांकि, जड़ों को काटकर रोपाई करना सामान्य है, लेकिन कभी—कभी कटे हुए छोर से विगलन होने की समस्या होती है। इस समस्या से बचने के लिए, अब लम्बी जड़ों वाली मूली की रोपाई गहरी नालियों में तिरछा (45°) करके की जाती है। रोपाई से पहले मूली की जड़ों को थाइरम या क्यूमान जैसे रसायनों से उपचार करना लाभकारी होता है।

खरपतवार नियंत्रण

मूली की फसल में पहली निराई बुवाई के 15—20 दिन बाद की जानी चाहिए। बुवाई के 15—20 दिन बाद पौधों को एक पंक्ति में पौधों के बीच 5—10 सेमी की दूरी पर रखना चाहिए। बुआई के कुछ दिनों के बाद मिट्टी को मेड़ों पर ऊपर उठाना मूली के बेहतर विकास, अच्छी गुणवत्ता और लम्बी जड़ों को प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है क्योंकि आमतौर पर बढ़ती जड़ें मिट्टी से बाहर धकेलती है। पेंडीमिथलीन, 1.2 किलोग्राम सक्रिय तत्व (ए. आई.) प्रति हेक्टेयर, एलाक्लोर, 1.5 किलोग्राम ए.आई. प्रति हेक्टेयर, या फ्लुक्लोरेलिन (बसालिन), 0.9 किलोग्राम ए. आई. प्रति हेक्टेयर की दर से इन रसायनों को 750 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण संभव होता है।

उर्वरक

पहली जुताई के बाद अच्छी तरह से सड़े हुए गोवर की खाद को 100—150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में दिया जाना चाहिए। रासायनिक उर्वरकों के मिश्रण को 80—100 कि ग्रा. नाइट्रोजन, 40—60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 80—100 कि.ग्रा. पोटेशियम प्रति हेक्टेयर की मात्रा दिया जाना चाहिए। खेत की खाद, फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की आधी मात्रा को खेत की तैयारी के समय दिया जाना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा को रोपाई के 20—30 के बाद देना चाहिए। मूली में पोटेशियम देने से विटामिन सी की मात्रा में बढोत्तरी देखी जाती है।

सिंचाई

मौसम की स्थिति के आधार पर 6—7 दिनों में एक बार फसल की सिंचाई की जानी चाहिए। बुवाई से पहले मिट्टी में नमी का होना आवश्यक है। बुआई के बाद एक हल्की सिंचाई दी जानी चाहिए। कटाई से पहले हल्की सिंचाई के माध्यम से समान नमी हो जाने से निकालने में आसानी होती है। असमान नमी की आपूर्ति कठोर, फूली और तीखी जड़ों का कारण बनती है।

तालिका—1 खेत के बीज मानक

फसल का नाम	निरीक्षण की संख्या	प्रथक्करण दूरी		अन्य प्रजातियों के पौधे		अन्य फसलों के पौधे		बीज जनित बीमारियों के पौधे	
		आधार बीज(मी.)	प्रमाणित बीज(मी.)	आधार बीज %	प्रमाणित बीज %	आधार बीज %	प्रमाणित बीज %	आधार बीज %	प्रमाणित बीज %
मूली जड़ उत्पादन	2	5	5	0.10	0.20	—	—	0.10	0.50
मूली बीज उत्पादन	2	1600	1000	0.10	0.20	—	—	—	—

मूली के विकार एवं उनका नियंत्रण

- **आकाशिनः** यह मूली का एक विकार है जो बोरॉन की कमी के कारण होता है। उच्च दिन और रात के तापमान (30/20–डिग्री सेल्सियस) के साथ–साथ कम मिट्टी की नमी के कारण भी यह विकार देखा जाता है। इस विकार को ठीक करने के लिए बोरॉन का 1–2 मिली ग्राम प्रति 1 लीटर की मात्र से छिड़काव किया जाना चाहिए।
- **पोर एक्सटेंट या पिथीनेसः** मूली की जड़ों में छेद हो जाना इस विकार का मुख्य लक्षण है जो की मुख्यतः कटाई में देरी के कारण होता है। इस विकार को ठीक करने के लिए फसल की कटाई उचित समय पर की जानी चाहिए।
- **फोर्किंगः** जड के विकास के दौरान अतिरिक्त नमी तथा भारी मिट्टी मिट्टी की सघनता के कारण यह विकार देखा जाता है। इस विकार को ठीक करने के लिए अधूरी गली हुई जैवीक खाद का इस्तेमाल किया जाता है।

रोग नियंत्रण

मूली में मुख्यतः व्हाइट रस्ट, अल्टरनेरिया ब्लाइट, पाउडरी मिलड्यू तथा मूली मोझेक बीमारी लग जाती हैं जिनके नियंत्रण के लिए बीज को कार्बेन्डाजिम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करना चाहिये और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिये। सभी कवक जनित रोग के लिये मेटालैक्सिल 4 प्रतिशत व मेंकोजेब 64 प्रतिशत का 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ छिडकाव करना चाहिये या वेटेबल सल्फर (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना लाभदायक माना जाता है।

कीट नियंत्रण

मूली में एफिड्स, बीटल और मस्टर्ड सॉ फ्लाई मुख्य कीट होते हैं। इनके प्रभावी नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी माने गए हैं:

प्रभावित पौधों के हिस्सों को काटकर नष्ट करना।

एफ़िड्स के नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड (0.25 मिली प्रति लीटर) का छिड़काव किया जाता है।

मेजबान खरपतवार को हटाना।

अन्य कीट के लिए लेम्डा–सायहेलोथ्रिन 5 प्रतिशत (1 मिली प्रति लीटर) का छिड़काव करना।

फसल की कटाई और बीज निकालना

यूरोपीय किस्मों को बुवाई के 25–30 दिन बाद काटा जाता है। लंबे समय तक जड़ों को खेत में रखने के कारण जड़ों में फूलना या उनका पीलापन देखा जाता है। एशियाई किस्मों को बुवाई के 40–45 दिन बाद उखाड़ दिया जाता है और वे यूरोपीय किस्मों की तुलना में अधिक समय तक खाने योग्य रहती हैं। जड़ों को मिट्टी से निकालने से पहले फसल की सिंचाई करनी चाहिए क्योंकि इससे जड़ों को आसानी से उखाड़ा जा सकता है। एशियाई किस्मों में पैदावार 150–200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक पायी जाती है, जबकि यूरोपीय किस्मों में पैदावार 50–70 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक देखी जाती है।

मूली की बीज फसल की कटाई पर्वतीय क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक और मैदानी क्षेत्रों में अप्रैल–मई में की जाती है। बीज की फलियों को पूरी तरह से पकने पर ही काटना चाहिए, क्योंकि मूली की पकी फलियां खेत में नहीं चटखतीं। कटाई के बाद, खलिहान में फलियों को पूरी तरह सुखाना जरूरी होता है, क्योंकि मड़ाई की प्रक्रिया के दौरान बीज टूटने की संभावना बढ़ जाती है। सामान्यतया 600 से 800 किलोग्राम प्रति हैक्टर बीज की उपज होती है।

अधिक कृषि आय हेतु विविधीकरण तहत उद्यमिता विकास

रश्मि सिंह, बिक्रम बर्मन, शेख वासाफुल कादेर, रजत कुमार नाथ और मेघना एन
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

कृषि के व्यावसायीकरण के साथ ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देना बहुत जरूरी है। खेती को केवल भगवान की कृपा या मानसून पर निर्भर नहीं समझना चाहिए, बल्कि इसे एक व्यवसाय की तरह अपनाना चाहिए। यह आज की आर्थिक नीतियों के अनुरूप भी है। ग्रामीण युवाओं को रोजगार की तलाश करने के बजाय रोजगार के नए अवसर बनाने पर ध्यान देना चाहिए। कृषि को आजकल के युवा इसलिये नही अपनाते क्योंकि कृषि से आर्थिक लाभ नहीं होता। कभी कभी तो किसान को अपनी लागत भी वापस नहीं मिलती।

कृषि अभी भी देश की सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 42.3% का योगदान देती है, और लगभग 18.2% जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इससे जुड़ी हुई है। इसलिए, कृषि को उद्योगों के साथ जोड़ना आर्थिक समृद्धि के लिए बहुत जरूरी है। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) में भी ग्रामीण औद्योगीकरण को ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना गया था। इसमें यह बताया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में आसान ऋण उपलब्ध कराए जाएंगे, जिससे लोग विभिन्न उद्यमों में निवेश कर सकें और रोजगार के नए अवसर बना सकें। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के महत्व पर जोर दिया था, क्योंकि अतिरिक्त अनाज का सही तरीके से उपयोग न होने के कारण किसानों में निराशा बढ़ रही थी।

कृषि और उद्योग के मजबूत तालमेल और व्यावसायीकरण से इन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। पारंपरिक कृषि को आर्थिक रूप से अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए किसानों को उद्यमशीलता (एंटरप्रेन्योरशिप) की मानसिकता अपनानी होगी। आज की परिस्थिति को देखते हुए, ऐसे किसान जरूरी हैं जो अपने खेत को केवल खेती की जगह एक आर्थिक इकाई के रूप में देखें। इसके लिए सोचने के तरीके और दृष्टिकोण में बदलाव जरूरी है।

सिर्फ तकनीकी प्रगति से कृषि में सुधार नहीं होगा, बल्कि किसानों को स्वयं उद्यमी बनना होगा। जब किसान कृषि से अच्छा मुनाफा कमाएंगे, तो वे नई तकनीकीं और व्यावसायिक तौर–तरीकों को अपनाने के लिए प्रेरित होंगे।

आज भारतीय कृषि बदलाव के दौर से गुजर रही है, जहां किसान पारंपरिक खेती पर निर्भर रहने के बजाय नई रणनीतियों को अपनाकर अपनी आय बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। किसानों में उद्यमशीलता को बढ़ावा देने के लिए फसल विविधीकरण (क्रॉप डाइवर्सिफिकेशन) एक प्रभावी तरीका साबित हो सकता है। विभिन्न प्रकार की फसलें उगाकर किसान जोखिम को कम कर सकते हैं, मिट्टी की उर्वरता बढ़ा सकते हैं और नए बाजारों तक पहुंच बना सकते हैं। इससे खेती केवल जीविका का साधन न रहकर एक लाभदायक व्यवसाय बन सकती है।

तिलहन और दलहन में उद्यमिता के अवसर

फसल विविधीकरण में उद्यमिता किसानों के लिए एक प्रभावी रणनीति है जिससे वे अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं, खेती में जोखिम को कम कर सकते हैं और टिकाऊ कृषि को अपनाकर दीर्घकालिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मोनोक्रॉपिंग के बजाय विविधीकरण अपनाने से किसान अधिक लाभदायक फसलों, नए बाजारों और जलवायु अनुकूल किस्मों का लाभ उठा सकते हैं। तिलहन और दलहन उत्पादन, प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन में अपार उद्यमिता संभावनाएं हैं, क्योंकि प्रोटीन युक्त आहार और खाद्य तेलों की मांग लगातार बढ़ रही है। फसल विविधीकरण के अंतर्गत किसान अपने खेत में अलग–अलग फसलें उगा सकते हैं, नई किस्मों को अपना सकते हैं, फसल चक्र को बदल सकते हैं या कम लाभ देने वाली फसलों के स्थान पर अधिक लाभकारी फसलों को अपना सकते हैं। जैसे, पारंपरिक अनाज की तुलना में फल–सब्जियां अधिक मुनाफा दे सकती हैं या मिश्रित खेती अपनाकर पशुपालन को खेती

में जोड़ा जा सकता है। यह न केवल आय में स्थिरता लाता है बल्कि मिट्टी की सेहत को सुधारता है, जलवायु परिवर्तन से होने वाले खतरों को कम करता है और खाद्य सुरक्षा में योगदान देता है। भारत में मुख्य रूप से तीन फसल मौसम होते हैंरू खरीफ (जून–सितंबर) जिसमें धान, मक्का, दलहन और मूंगफली जैसी फसलें उगाई जाती हैं; रबी (अक्टूबर–मार्च) जिसमें गेहूं, सरसों और चना जैसी फसलें शामिल होती हैं; और जायद जो खरीफ और रबी के बीच की छोटी अवधि की फसलों के लिए उपयुक्त समय होता है। भारत में हर साल लगभग 300 मिलियन टन अनाज का उत्पादन होता है, लेकिन प्रति व्यक्ति अनाज की खपत में गिरावट आने के कारण कुल उपभोग 200 मिलियन टन से भी कम रह गया है, जिससे करीब 100 मिलियन टन अनाज अधिशेष में रहता है। यह दर्शाता है कि किसानों को केवल गेहूं और चावल पर निर्भर रहने के बजाय अन्य लाभकारी फसलों को अपनाने की आवश्यकता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा दलहन उत्पादक, उपभोक्ता और आयातक देश है, जहां दलहन खाद्यान्न उत्पादन के कुल क्षेत्रफल का 20% हिस्सा घेरती हैं, लेकिन कुल उत्पादन में इनका योगदान केवल 7–10% तक सीमित है। 2023–24 में भारत ने 4.65 मिलियन टन दलहन आयात किया, जिसकी कीमत 3.75 बिलियन डॉलर थी। इसी तरह, तिलहन उत्पादन भी भारतीय कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन देश की खाद्य तेल आवश्यकताओं का 55–60% आयात के माध्यम से पूरा किया जाता है। प्रति व्यक्ति खाद्य तेल खपत 19.7 किलोग्राम प्रति वर्ष तक पहुंच गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि घरेलू तिलहन उत्पादन को बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है। 2022–23 में भारत ने 16.5 मिलियन टन खाद्य तेल का आयात किया, जो घरेलू आपूर्ति और मांग के बीच भारी अंतर को दर्शाता है। यदि किसानों को आत्मनिर्भर बनना है और बढ़ती वैश्विक मांग का लाभ उठाना है, तो उन्हें अपने खेती के तरीके में बदलाव लाकर तिलहन और दलहन जैसी आर्थिक रूप से लाभकारी फसलों की ओर बढ़ना चाहिए, जिससे उनकी आय में वृद्धि हो और देश की आयात निर्भरता कम हो सके।

कृषि विविधीकरण के लाभ

1. **जोखिम कम करना:** फसल विविधीकरण किसानों के उत्पादन और आर्थिक जोखिमों को एक विस्तृत दायरे में फैलाने में मदद करता है। इससे बुरी मौसम स्थितियों या बाजार के झटकों के कारण होने वाली वित्तीय असुरक्षा को कम किया जाता है।

2. **बाजार विस्तार:** विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने से नए बाजारों तक पहुँचने के अवसर मिलते हैं, जिससे खेतों की आर्थिक क्षमता बढ़ती है।

3. **ग्रामीण आर्थिक विकास:** कुछ क्षेत्रों में, फसल विविधीकरण से नई कृषि–आधारित उद्योगों की स्थापना हो सकती है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है और ग्रामीण विकास के अवसर बनते हैं।

4. **स्वस्थ खाद्य आपूर्ति:** विविधीकृत खेती प्रणाली से अधिक प्रकार के खाद्य पदार्थ उत्पादित होते हैं, जिससे मनुष्यों और मवेशियों दोनों को बेहतर पोषण मिलता है।

5. **कृषि लाभ:**
    - **कीट प्रबंधन:** विविधीकृत खेती कीटों और रोगों के चक्र को तोड़ देती है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम होती है।
    - **खरपतवार और मिट्टी कटाव नियंत्रण:** यह खरपतवार को कम करता है और मिट्टी के कटाव को रोकता है, जिससे खेत की उत्पादकता बनी रहती है।
    - **मिट्टी में नमी की संरक्षण:** विविध फसलें मिट्टी में पानी को बनाए रखने में मदद करती हैं।

6. **मिट्टी की सेहत में सुधार:** विविधीकृत खेती प्रणाली मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाती है, जो प्राकृतिक कीट नियंत्रण में मदद करती हैं और मिट्टी की उर्वरता में सुधार करती हैं।

7. **लागत में कमी:**
    - फसल घुमाव (क्रॉप रोटेशन) में दलहनों को शामिल करने से नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है।
    - घुमाव में अधिक फसलें जोड़ने से कीटों की समस्याएं कम होती हैं, जिससे कीटनाशकों पर खर्च कम होता है।

8. **आय में वृद्धिः** विविधीकृत खेती प्रणाली उत्पादन लागत को कम करती है और साथ ही सकल आय में वृद्धि की संभावना होती है, जिससे खेत की समग्र आर्थिक स्थिरता बढ़ती है।

विविधीकरण के लिए उद्यमशीलता दृष्टिकोण आवश्यक

भारत में तिलहन और दलहन की खेती की व्यापक संभावनाएँ हैं, क्योंकि देश अपनी खपत जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर आयात पर निर्भर है। किसान पारंपरिक फसलों जैसे चावल और गेहूं से हटकर तिलहन और दलहन उत्पादन की ओर रुख करके इस बढ़ती मांग का लाभ उठा सकते हैं। इसके लिए उन्हें अपनी खेती को केवल आजीविका का साधन न मानकर एक कृषि उद्यम के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत बाजार प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना, उच्च उत्पादकता वाली किस्मों का उपयोग करना और सटीक खेती तथा फसल चक्र जैसी कुशल कृषि पद्धतियों को अपनाना शामिल है, जिससे उपज और लाभ दोनों बढ़ाए जा सकते हैं।

तिलहन और दलहन की खेती को और अधिक लाभकारी बनाने के लिए मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण, ब्रांडिंग और उपयुक्त फसल कटाई के बाद प्रबंधन आवश्यक है। किसान–उत्पादक संगठन (FPOs) के माध्यम से सामूहिक विपणन, वित्तीय सहायता प्राप्त करना और तिलहन व दलहन संवर्धन के लिए सरकारी योजनाओं का लाभ उठाना किसानों को जोखिम कम करने और आय बढ़ाने में मदद कर सकता है। सतत कृषि पद्धतियों को अपनाकर और गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित करके किसान न केवल भारत की आयात निर्भरता को कम कर सकते हैं, बल्कि आत्मनिर्भरता प्राप्त कर अपनी आजीविका में भी सुधार कर सकते हैं।

पल्स और तिलहन की खेती में विविधीकरण के लिए समर्थन

संस्थागत समर्थनः राज्य कृषि विभाग और कृषि विज्ञान केंद्र (KVKs) किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी प्रदर्शन और सलाहकार सेवाएँ प्रदान करते हैं, जिससे वे तिलहन और दलहन जैसी विविधीकृत फसलों को अपनाने के लिए सक्षम हो सकें।

सरकारी पहलः भारत सरकार ने तिलहन और दलहन जैसी प्रमुख फसलों के लिए फसल निदेशालय स्थापित किए हैं, जो प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और विकास पर ध्यान केंद्रित करते हैं। ये निदेशालय किसानों को अनुसंधान, संसाधन और तकनीकी विशेषज्ञता तक पहुँचने में सहायता प्रदान करते हैं।

अनुसंधान संस्थान और राज्य कृषि विश्वविद्यालयः भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान (IIPR) और भारतीय तिलहन अनुसंधान संस्थान (IIOR) जैसे शोध संस्थान क्षेत्र–विशेष मार्गदर्शन, उन्नत बीज किस्में और प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करते हैं। राज्य कृषि विश्वविद्यालय भी शोध–आधारित समाधान और व्यावहारिक ज्ञान देकर किसानों की मदद करते हैं।

वित्तीय सहायता तंत्रः (नाबार्ड) और सहकारी समितियाँ किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं, जिसमें ऋण, फसल बीमा और सब्सिडी शामिल हैं, ताकि किसान नई फसलों में निवेश कर सकें और वित्तीय जोखिम कम किया जा सके।

किसान उत्पादक संगठन (FPOs)ः यह संगठन किसानों को सामूहिक विपणन, मूल्य संवर्धन और बेहतर बाजार पहुंच में सहायता करते हैं। इससे किसानों की सौदेबाजी की शक्ति बढ़ती है, लागत कम होती है और मुनाफा बढ़ता है।

मोबाइल प्लेटफ़ॉर्म और डिजिटल संसाधनः किसान सुविधा और एग्रीमार्केट जैसे मोबाइल प्लेटफॉर्म फसल–विशेष मार्गदर्शन, मौसम पूर्वानुमान और बाजार जानकारी प्रदान करते हैं, जिससे किसान बेहतर निर्णय ले सकते हैं और अपने उत्पादों के लिए अच्छे दाम प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि विविधीकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकारी योजनाएँ और उनके उपाय

कृषि विविधीकरण कार्यक्रम (CDP)ः कृषि और किसान कल्याण विभाग (DA&FW) राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) के तहत कृषि विविधीकरण कार्यक्रम (CDP) चलाता है। इस योजना का उद्देश्य जल–गहन धान की खेती से वैकल्पिक फसलों जैसे दलहन, तिलहन, मोटे

अनाज, पोषक अनाज और कपास की ओर भूमि का रुख मोड़ना है, विशेषकर हरियाणा, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के राज्यों पर ध्यान केंद्रित करना।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM): NFSM के तहत, भारत सरकार विविधीकृत फसल उत्पादन को बढ़ावा देती है, जिसमें दलहन, मोटे अनाज, पोषक अनाज, कपास और तिलहन शामिल हैं। यह योजना राज्य सरकारों के साथ मिलकर कृषि विविधीकरण को बढ़ावा देने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए काम करती है।

बागवानी के एकीकृत विकास के लिए मिशन (MIDH): मिशन का उद्देश्य बागवानी फसलों के विविधीकृत उत्पादन को बढ़ावा देना है। यह योजना फल, सब्जियाँ और अन्य बागवानी उत्पादों की खेती को प्रोत्साहित करती है, जिससे किसानों को कृषि गतिविधियों में विविधता लाने में मदद मिलती है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY): RKVY राज्यों को विशेष क्षेत्रीय आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के आधार पर कृषि विविधीकरण रणनीतियों को लागू करने के लिए लचीलापन प्रदान करता है। राज्य, राज्य स्तरीय स्वीकृति समिति (SLSC) की मंजूरी प्राप्त करने के बाद, RKVY के तहत कृषि विविधीकरण को बढ़ावा दे सकते हैं, जिसमें राज्य के मुख्य सचिव अध्यक्ष होते हैं।

मेरा पानी–मेरी विरासत योजना (हरियाणा): यह योजना किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है जो धान की खेती से जल–सम्भारक वैकल्पिक फसलों जैसे दलहन, तिलहन, बाजरा और सब्जियाँ की ओर रुख करते हैं, जिससे जल संरक्षण और कृषि विविधीकरण को बढ़ावा मिलता है।

कृषि विविधीकरण के लिए चुनौतियाँ

कुछ फसलों के लिए उपयुक्तता: कई क्षेत्रों में, कृषि वर्षा पर बहुत निर्भर है, जिससे कुछ फसलें उगाने के लिए उपयुक्त नहीं होतीं। सिंचाई तक सीमित पहुँच या अप्रत्याशित मौसम की स्थिति कुछ फसलों के लिए विविधीकरण की व्यवहार्यता को कम कर सकती है।

संसाधनों का अत्यधिक उपयोग: भूमि और जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जो पर्यावरणीय अवनति का कारण बनता है। अस्थिर प्रथाएँ भूमि की दीर्घकालिक उत्पादकता को नुकसान पहुँचा सकती हैं, जिससे फसलों के विविधीकरण की व्यवहार्यता प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त, पशुपालन, जो एक प्रमुख कृषि प्रथा है, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, वनों की कटाई और जैव विविधता के नुकसान में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

कृषि विविधीकरण पर जागरूकता की कमी: फसल चक्रीयकरण और इंटरक्रॉपिंग पर कई वैज्ञानिक अध्ययन होने के बावजूद, कृषि विविधीकरण एक समग्र रणनीति के रूप में व्यापक रूप से समझा और अभ्यास नहीं किया जाता। कई किसान विविधीकरण के लाभों और दृष्टिकोणों के बारे में स्पष्ट रूप से समझ नहीं पाते, जिससे इसके अपनाने में बाधाएँ आती हैं।

ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी: कमजोर अनुसंधान – प्रसार – किसान संबंध, प्रशिक्षण तक अपर्याप्त पहुँच, और किसानों के बीच उच्च निरक्षरता दर उनके लिए नई कृषि प्रथाएँ अपनाने और फसलों के विविधीकरण को प्रभावी रूप से लागू करने में सीमाएँ उत्पन्न करती हैं।

वित्तीय सीमाएँ: कृषि विविधीकरण के लिए बीज, उपकरण और बुनियादी ढाँचे में महत्वपूर्ण निवेश की आवश्यकता होती है। नई जानकारी और संसाधनों को प्राप्त करने की लागत किसानों, विशेषकर छोटे किसानों, के लिए एक बाधा हो सकती है, जिन्हें वित्तीय विकल्पों तक पहुँच नहीं होती।

आहार की आदतों से टकराव: उन क्षेत्रों में जहां चावल और गेहूं प्रधान आहार हैं, फसलों का विविधीकरण आहार की गहरी आदतों के कारण प्रतिरोध का सामना कर सकता है। इसके अतिरिक्त, फसल उत्पादन में बदलाव स्थापित बाजार गतिशीलता और उपभोक्ता उपभोग पैटर्न को प्रभावित कर सकता है।

फसल विविधीकरण रणनीतियाँ:

तालिका 1: मल्टी–लेयर क्रॉपिंग

उदाहरण	निष्कर्ष
सुपारी + काली मिर्च + अनानास + नींबू	इस संयोजन को उच्च उपज और आय के हिसाब से सबसे लाभकारी माना गया है, जिसमें लाभ–लागत अनुपात 1:5.08 है।
मक्का + सब्जी लोबिया + गोभी सरसों (रैपसीड)	इस फसल प्रणाली ने पारंपरिक चावल–गेहूँ प्रणाली की तुलना में उच्च उत्पादन दक्षता, लाभप्रदता और बेहतर संसाधन उपयोग दिखाया।
सहजन + अदरक + अरहर (एग्रोफॉरेस्ट्री प्रणाली)	सहजन (मोरिंगा) को एक शीर्ष छांव फसल के रूप में जोड़ने से मिट्टी की उर्वरता में सुधार और कटाव में कमी आई।
मक्का + पालक (इंटरक्रॉप)	मक्का के साथ पालक (जो जल्दी बढ़ने वाली पत्तेदार फसल है) मिलाने से कुल उत्पादकता में सुधार हुआ और वर्ष भर आय हुई।

तालिका 2: किसानों के लिए 1 एकड़ का फसल कैलेंडर

मौसम	फसल प्रकार	भूमि आवंटन	फसल विकल्प	बुवाई का समय	कटाई का समय	मुख्य नोट्स
प्री–खरीफ	सब्जियाँ	0.5 एकड़	खीरा, भिंडी, कद्दू	फरवरी–मार्च	अप्रैल– मई	उच्च उपज देने वाली सब्जियाँ चुनें जिनका विकास चक्र छोटा हो।
प्री–खरीफ	दालें	0.3 एकड़	मूँग दाल, लोबिया	मार्च	मई	जल्दी बढ़ने वाली दलहनी फसलें जो खरीफ फसलों से पहले मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती हैं।
प्री–खरीफ	अनाज	0.2 एकड़	मक्का (कम अवधि वाली)	फरवरी–मार्च	मई	जल्दी मक्का की फसल से खरीफ फसलों के लिए भूमि तैयार होती है।
खरीफ	अनाज	0.4 एकड़	धान, हाइब्रिड मक्का	जून	सितंबर–अक्टूबर	धान के लिए अधिक जल चहिए, जबकि हाइब्रिड मक्का सूखा–प्रतिरोधी है।
खरीफ	सब्जियाँ	0.3 एकड़	टमाटर, मिर्च, बैंगन, कद्दू	जून	सितंबर	फैली हुई बुवाई से बाजार में निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित होती है।
खरीफ	दालें	0.2 एकड़	अरहर (पिगियन पी)	जून	दिसंबर	लंबी अवधि वाली दाल फसल जो मिट्टी की सेहत में सुधार करती है।
खरीफ	तेलहनी	0.1 एकड़	मूँगफली	जून	सितंबर	समय का अधिकतम उपयोग करने के लिए छोटी अवधि वाली मूँगफली किस्मों का चयन करें।

रबी	अनाज	0.4 एकड़	गेहूँ, जौ	अक्टूबर–नवंबर	मार्च–अप्रैल	रबी अनाज से स्थिर आय सुनिश्चित होती है; उच्च उपज के लिए प्रमाणित बीजों का उपयोग करें।
रबी	सब्जियाँ	0.3 एकड़	फूलगोभी, मटर, पालक, शलरी	अक्टूबर–नवंबर	जनवरी–फरवरी	सर्दियों में पत्तेदार सब्जियों और मूल फसलों की उच्च मांग होती है।
रबी	दालें	0.2 एकड़	चना, मसूर	अक्टूबर–नवंबर	फरवरी– मार्च	फसलों के साथ दालें मिश्रित करें ताकि भूमि का बेहतर उपयोग हो सके।
रबी	तेलहनी	0.1 एकड़	सरसों	अक्टूबर–नवंबर	फरवरी– मार्च	चना के साथ समग्र भूमि उपयोग के लिए इसे मिलाकर लगाएं।
जायद (गर्मी)	सब्जियाँ	0.4 एकड़	लौकी, कद्दू, भिंडी	मार्च–अप्रैल	मई–जून	सब्जियाँ मानसून से पहले लगातार आय देती हैं।
जायद (गर्मी)	दालें	0.3 एकड़	लोबिया, मूँग दाल	मार्च–अप्रैल	जून	मिट्टी में नाइट्रोजन को पुनः भरने वाली जल्दी बढ़ने वाली फसलें।
जायद (गर्मी)	अनाज	0.2 एकड़	बाजरा (बाजरा)	मार्च–अप्रैल	जून	गर्मी में उगने वाली फसलें जो गर्मी सहन कर सकती हैं।
जायद (गर्मी)	मौसमी फल	0.1 एकड़	पपीता, अमरूद, केला	सालभर बुवाई	निरंतर फसल	फलों का मौसम के बीच फसल कटाई के बीच एक बफर के रूप में कार्य करता है।

सफलता की कहानियाँ

कई किसानों ने कृषि विविधीकरण के माध्यम से सफलतापूर्वक कृषि उद्यमि में तबदीली की है। मुरादनगर ब्लॉक के केंद्र में, किसानों के एक समूह ने एक अभिनव कृषि विविधीकरण मॉडल को अपनाया, जिससे उनके खेतों को एक समृद्ध, बहु–स्तरीय खेती प्रणाली में बदल दिया गया। उन्होंने भूमिगत फसलों के रूप में हल्दी और प्याज से शुरुआत की, जिससे मिट्टी के उपयोग को अधिकतम किया। इसके ऊपर, मौसमी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे धनिया, पालक, और मेथीफलीं, जो त्वरित लाभ देती हैं। कद्दू और तोरी जैसे बेलनुमा पौधे भूमि पर फैलते गए, जबकि ऊर्ध्वाधर स्थान का कुशलतापूर्वक उपयोग करते हुए लौकी, करेला, और ताम्बा–लौकी को बांस और स्टील वायर संरचनाओं पर उगाया गया। खेत की सीमा पर, पपीता और केला जैसे फलदार पेड़ खड़े थे, जो दीर्घकालिक लाभ सुनिश्चित करते थे। यह प्रणालीगत दृष्टिकोण न केवल स्थान का अधिकतम उपयोग करता था, बल्कि पूरे वर्ष आय सुनिश्चित करता था, जिससे आस–पास के किसानों को समान रणनीतियाँ अपनाने के लिए प्रेरित किया।

अकोला जिले के श्री महादे राजाराम टोपेले ने जोखिम–लचीले इंटरक्रॉपिंग से अपनी खेती का कायाकल्प किया, जो अनियमित वर्षा से उत्पन्न चुनौतियों को कम करता है। उन्होंने सोयाबीन, अरहर और मूंग की उन्नत किस्मों को एकीकृत किया, जिससे उत्पादकता अधिकतम हुई। उनके रणनीतिक सोयाबीन व अरहर (4:2) की अंर्तफसल प्रणाली ने एकल खेती की तुलना में सोयाबीन समकक्ष उपज में 27.93% वृद्धि की, जिससे उनके लाभ में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई। इसके अतिरिक्त, कपास व मूंग दाल (1:1) संयोजन ने 80–90 हेक्टेयर में खेत की लचीलापन को मजबूत किया। सोयाबीन के लिए ब्रॉड बेड और फरो (BBF) बुआई तकनीक का उपयोग करते हुए, उन्होंने सूखा–प्रवण परिस्थितियों में भी स्थिर उपज सुनिश्चित

की। उनकी सफलता ने अन्य किसानों के लिए एक मॉडल बना दिया है जो जलवायु–संवेदनशील खेती की दिशा में अग्रसर हैं।

पंजाब के कपूरथला जिले के श्री सरवण सिंह चंडी ने अपनी 30 एकड़ ज़मीन को एक विविधीकृत कृषि उद्यम में बदल दिया। उन्होंने अनाज, दालें, चारा फसलें, पुष्प उत्पाद, तेल बीज, फलोत्पादन और मधुमक्खी पालन को शामिल किया, जिससे कई आय स्रोत सुनिश्चित हुए। उन्होंने अपनी सब्जी फसलों के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली स्थापित की, जिससे जल उपयोग को अनुकूलित किया गया और उत्पादकता को बनाए रखा गया। उनकी खरीफ की फसलोंने (बासमती चावल, दालें, चारा और प्याज) ₹ 9,50,250 का शानदार सकल आय उत्पन्न किया। रबी के दौरान, उन्होंने गेहूं से ₹ 3,29,000, आलू से ₹ 3,15,000, दालों से ₹ 40,000, शिमला मिर्च से ₹ 2,50,000, सूरजमुखी से ₹ 18,000, बर्सीम से ₹ 60,000 और गेंदे के फूलों से ₹ 25,000 की आय प्राप्त की, कुल मिलाकर ₹ 10,37,000 हुआ। उनकी सफलता इस बात का उदाहरण है कि कैसे रणनीतिक विविधीकरण कृषि आय और लचीलापन को बढ़ा सकता है।

इसी तरह, कपूरथला के श्री सुखदेव सिंह ने अपने कृषि भूमि को गिप्सम का उपयोग करके पुनः प्राप्त किया, जिससे मिट्टी की उर्वरता में सुधार हुआ, और पारंपरिक गेहूं–चावल चक्र से बाहर निकलते हुए शक्करकन्द, आलू, सरसों, बर्सीम, और मक्का में विविधीकरण किया। उनके सर्वोत्तम प्रथाओं में भूमिगत सिंचाई प्रणालियाँ, संकट बिक्री से बचने के लिए रणनीतिक भंडारण, और वास्तविक समय कृषि अंतर्दृष्टियों के लिए (IT) का उपयोग शामिल था। कृषि विविधीकरण में उनके नवाचार प्रयासों के लिए उन्हें 2017 में पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना से प्रतिष्ठित दलिप सिंह ढालिवाल मेमोरियल पुरस्कार प्राप्त हुआ, जिसने उनके स्थिर और लाभकारी कृषि में योगदान को सम्मानित किया।

उद्यमिता मानसिकता को विकसित करने की दिशा

कृषक ऐसा क्या करे जिससे वह खेती से अधिक आय अजित कर सके। उसे अपनी जमीन पर फसल चक्र ऐसा बनाना चाहिए कि वह रोज कुछ आमदनी के लिए मंडी में जा सके। तेल बीज और दाल उत्पादक किसानों में उद्यमिता मानसिकता का विकास करना उत्पादकता को बढ़ाने, बाजार से जोड़ने, और दीर्घकालिक लाभप्रदता सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह मानसिकता विकासात्मक दृष्टिकोण, अवसरों को पहचानने, जोखिमों को सहने, परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल होने, रचनात्मकता और नवाचार को बढ़ावा देने, लचीलापन विकसित करने, और निरंतर सीखने की आवश्यकता को समझती है। किसानों को महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित करने चाहिए, चुनौतियों को अपनाना चाहिए, नए विचारों के साथ प्रयोग करना चाहिए, मार्गदर्शन ले कर, व्यापक रूप से आगे बढ़ना चाहिए। उन्हे उद्यमिता समुदायों से भी जुड़ना चाहिए और कृषि विविधीकरण द्वारा अपनी कृषि आय को बढ़ाना चाहिए। बाजार में गैप की पहचान करना और नेटवर्किंग और सहयोग का लाभ उठाना व्यापारिक सफलता में मदद कर सकता है। सरकार, कृषि विस्तार सेवाओं और वित्तीय संस्थानों सहित संबंधित पक्षों को किसानों को इस यात्रा में समर्थन प्रदान करना चाहिए, संसाधन, शिक्षा और नए अवसरों के प्रति जागरूकता प्रदान करके। उद्यमिता दृष्टिकोण को अपनाकर, किसान अपनी आर्थिक लचीलापन को बढ़ा सकते हैं और कृषि क्षेत्र के सतत विकास में योगदान कर सकते हैं।

□ □ □

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

वार्षिक शुल्क ₹150/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012
फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600
पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)
ई-मेल: incharge_atic@iari.res.in

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित
फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,